धर्म एवं अध्यात्म के तत्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

www.awgp.org वर्ष–८१ अंक–३ ₹–१५ प्रति ₹ –१८० वार्षिक मार्च–२०१७
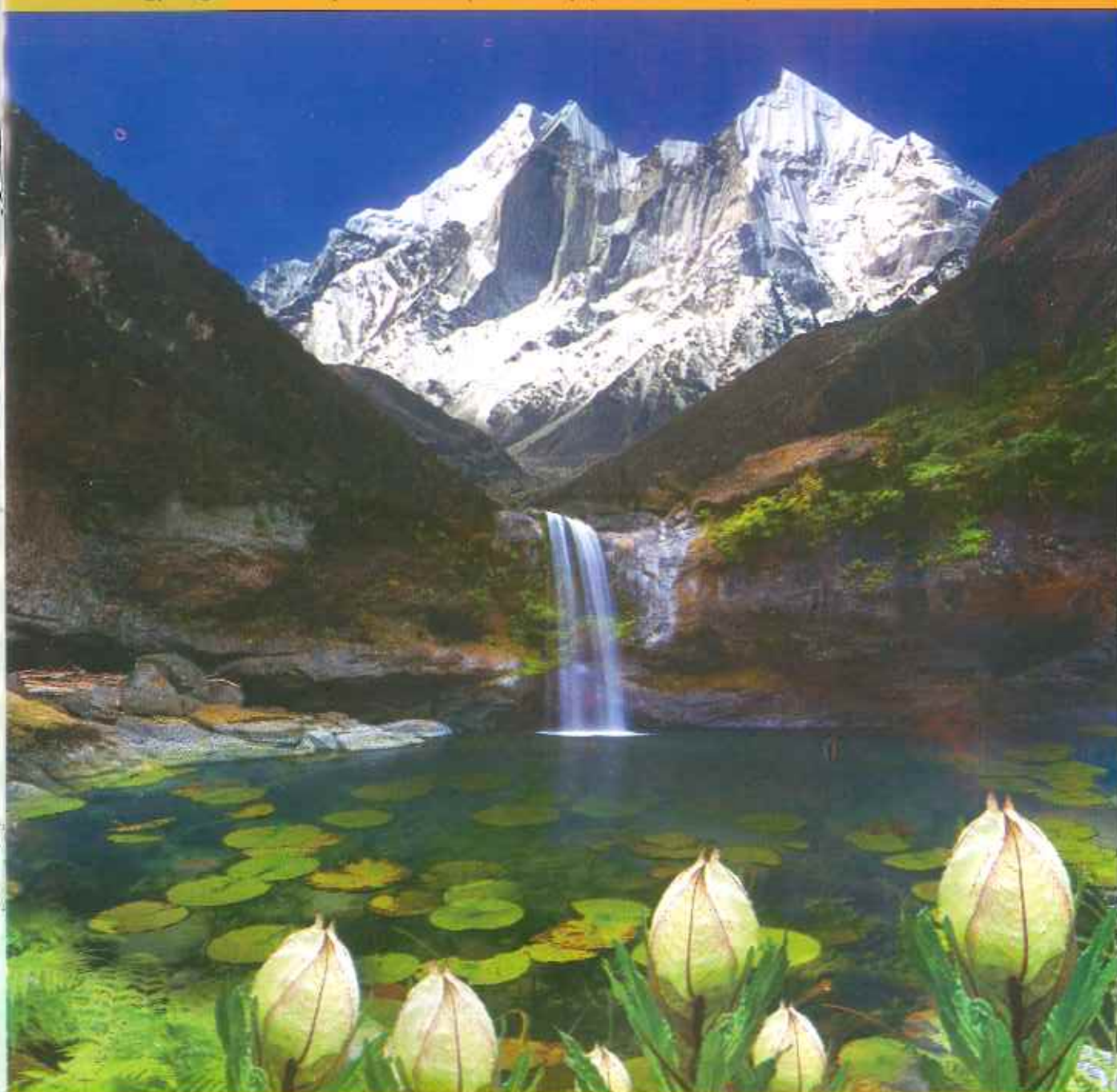
संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा माता
भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा

दूरभाष नं०(०५६५) २४०३९४०
२४००८६५, २४०२५७४
मोबाइल नं० ९९२७०८६२९१
७५३४८१२०३६
७५३४८१२०३७
७५३४८१२०३८
७५३४८१२०३९
फैक्स नं० (०५६५) २४१२२७३
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
ईमेल–ajsansthan@awgp.org
प्रातः १० से सायं ६ तक

वर्ष	: ८१
अंक	: ०३
मार्च	: २०१७
फाल्गुन-चैत्र	: २०७३-७४
प्रकाशन तिथि	: ०१.०२.२०१७
वार्षिक चंदा	
भारत में	: १८०/-
विदेश में	: १४००/-
आजीवन	: ३५००/-
(सुरक्षा निधि)	

शैतान

शैतान इन दिनों बीते युगों से भी ज्यादा चालाक हो गया है। उसने अपनी शैतानियों के तौर-तरीके बदल डाले हैं। उसने अब धर्म की चादर ओढ़ ली है। धर्म के क्षेत्र में उसने प्रपंच और पाखंड रचने शुरू कर दिए हैं। अब वह मंदिर और मसजिद के झगड़े कराने में जुट गया है। तभी तो परमात्मा के प्रेम के प्रतीक उपासनागृह भी बैर व वैमनस्य के गढ़ बन गए हैं। इन्होंने एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य के विरोध में खड़ा कर दिया है। एक के शास्त्र को दूसरे के शास्त्र का शत्रु बना दिया है।

धर्म और मंदिर—मनुष्य में मैत्री लाने के बजाय उनके मध्य शत्रुता के गढ़ बन गए हैं। उन्होंने जगत को प्रेम से भरने के बजाय बैर व वैमनस्य के विष से भर दिया है। अपने को धर्म-धुरंधर कहने वाले लोग समझ ही नहीं पा रहे हैं कि वे शैतान की कारगुजारियों में शामिल हैं। वे जब धर्म के नाम पर किसी के उपासनागृह तोड़ते हैं, किसी की हत्या करते हैं तो शैतान खुशियाँ मनाता है।

एक बार ये धर्म-धुरंधर लोग अपने इसी तरह के विध्वंसक कारनामे करके एक संत के पास गए। उन्होंने उनकी पूरी बात सुनकर कहा—"क्या आप लोग शैतान की भाषा समझते हैं?" अपने कहे को समझाने के लिए उन्होंने उन सबको आपबीती सुनाई। एक बार वे नाव से नदी पार कर रहे थे। नाव में बैठे कुछ शरारती तत्त्व उन्हें परेशान करने लगे। वे जब रात्रिकालीन प्रार्थना में बैठे तो यह सोचकर कि अब तो वे कुछ नहीं कर सकेंगे, उन शरारती तत्त्वों ने उनके सिर पर जूते मारने शुरू कर दिए। वे तो प्रार्थना में थे। तभी आकाशवाणी हुई—"मेरे प्यारे! तू कहे तो मैं नाव उलट दूँ।" यह सुनकर उन्होंने थोड़ा हैरान होते हुए कहा—"मेरे प्यारे प्रभु! प्रार्थना के क्षणों में यह शैतान की वाणी क्यों सुनाई पड़ने लगी। यदि कुछ उलटने की आवश्यकता है तो इनकी बुद्धि उलट दें।" इस पर परमात्मा की वाणी उन्हें सुनाई दी—"मैं बहुत खुश हूँ कि तुमने शैतान को पहचान लिया। मैं तो सर्वदा प्रेम में निवास करता हूँ। बैर व विध्वंस से मेरा कोई संबंध नहीं है।" ❑

▶युवाक्रांति वर्ष◀

विषय सूची

आवरण पृष्ठ परिचय

देवतात्मा हिमालय की गोद में खिलते ब्रह्मकमल

मार्च-अप्रैल, २०१७ के पर्व-त्योहार

शनिवार	०४ मार्च	सूर्य षष्ठी	मंगलवार	०४ अप्रैल	श्रीराम नवमी
रविवार	०५ मार्च	होलाष्टक	शुक्रवार	०७ अप्रैल	कामदा एकादशी
बुधवार	०८ मार्च	आमलकी एकादशी	रविवार	०९ अप्रैल	महावीर जयंती
रविवार	१२ मार्च	होलिका दहन	सोमवार	१० अप्रैल	पूर्णिमा व्रत
सोमवार	१३ मार्च	होली	मंगलवार	११ अप्रैल	हनुमज्जयंती
सोमवार	२० मार्च	शीतलाष्टमी	शुक्रवार	१४ अप्रैल	अंबेडकर जयंती/ गुड फ्राइडे
शुक्रवार	२४ मार्च	पापमोचनी एकादशी	शनिवार	२२ अप्रैल	वरूथिनी एकादशी 'स्मा.'
मंगलवार	२८ मार्च	नवरात्रारंभ/संवत्सरारंभ	शुक्रवार	२८ अप्रैल	शिवाजी जयंती/ परशुराम जयंती
गुरुवार	३० मार्च	गणगौर	शनिवार	२९ अप्रैल	अक्षय तृतीया
रविवार	०२ अप्रैल	सूर्य षष्ठी	रविवार	३० अप्रैल	आद्यशंकराचार्य जयंती

यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।

►युवाक्रांति वर्ष◄

विशिष्ट सामयिक चिंतन

आत्मकल्याण व विश्वकल्याण हेतु मनाएँ सामूहिक साधना पर्व

२८ मार्च से नवरात्र का साधना उत्सव आरंभ हो रहा है। अपना गायत्री परिवार समर्थ साधकों का समुदाय है। परमपूज्य गुरुदेव ने हम सबको गायत्री महामंत्र की दीक्षा के साथ ही आध्यात्मिक जीवन जीने की कला और तप-साधना की सामर्थ्य भी सौंपी है। हमें सिखाया है कि आध्यात्मिक दृष्टिकोण और तप के साथ हम न केवल अपने निजी जीवन की समस्याओं का समाधान कर सकते हैं, बल्कि लोककल्याण और सृष्टिकल्याण में भी महत्त्वपूर्ण व समर्थ भूमिका निभा सकते हैं। यह नवरात्र हम सबके सामने आत्मकल्याण व लोककल्याण के दोहरे सुअवसर को लेकर आया है। हम सभी को एकजुट होकर अपने गायत्री तप से सुरक्षा साधना का समर्थ ब्रह्मास्त्र तैयार करना है। अपनी वर्षों की निरंतरता, गायत्री-साधना की जमापूँजी से गायत्री परिवार के तपस्वी परिजन ऐसा कर सकने में सब प्रकार से योग्य और सक्षम हैं।

अपने युग की व्यापक एवं भयानक समस्याओं के दो आधारभूत कारण हैं। इनमें से पहला कारण है— चेतना-क्षेत्र की बढ़ती हुई असुरता और दूसरा कारण है—भौतिक क्षेत्र की बढ़ती हुई विषाक्तता। इन दिनों, दोनों की अनुभूति हम सब करते रहते हैं। चेतना-क्षेत्र की बढ़ती हुई असुरता ने मनुष्य के मन पर भयावह आक्रमण किए हैं। विचारों में, भावनाओं में अँधियारा बेतहाशा बढ़ा है। चिंतन, चरित्र व व्यवहार बुरी तरह से प्रदूषित हुए हैं। अचिंतनीय चिंतन की ओर, अकरणीय कर्म की ओर लोग तेजी से आकर्षित हो रहे हैं। बड़ों की जाने दें, अब तो बच्चे भी ऐसे घृणित कार्य कर देते हैं कि घृणा को भी घृणा हो जाए, शरम को भी शरम आने लगे। यह सब चेतना-क्षेत्र में बढ़ती हुई असुरता का ही प्रभाव है।

इसी तरह भौतिक क्षेत्र में विषाक्तता भी बढ़ी है। आएदिन समाचारपत्रों में इसकी चर्चा होती रहती है। हवा, पानी में जहर घुलने की बात, इनके जहरीले होने की बात तो अब पुरानी पड़ने लगी है; अब तो मिट्टी में जहर घुलने लगा है। खाने की चीजें जहरीली होने लगी हैं। जाएँ तो कहाँ जाएँ, और खाएँ तो क्या खाएँ—की स्थिति बन गई है। परेशानी सारी दुनिया में है, अपने देश में भी इसका प्रकोप कम नहीं है। वैज्ञानिक इसका कारण और निवारण, पदार्थ जगत में ढूँढ़ रहे हैं। उनके ये प्रयास सराहनीय तो हैं, पर दुर्भाग्यवश अधूरे हैं। इन्हें पूरा करने के लिए आध्यात्मिक जगत के तपस्वियों व मनस्वियों को भी गतिशील व सक्रिय होना होगा।

चिंतन गंभीर व विश्लेषण व्यापक हो तो आत्मिक क्षेत्र में बुद्धि विपर्यय एवं आस्था-संकट को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। भ्रष्ट चिंतन ने दुष्ट आचरण को बढ़ाया है। इसी कारण अवांछनीयता को उच्छृंखलता के स्तर तक पहुँचने का अवसर मिला है। अब ज्यादातर लोग अनीति अपनाने में एकदूसरे से आगे बढ़ना चाहते हैं। दुष्प्रवृत्तियाँ क्रमशः परंपरा में परिवर्तित होकर मानवीय स्वभाव में सम्मिलित होने लगी हैं। अनीति अपनी क्रिया-प्रतिक्रिया के रूप में भयंकर विक्षोभ कर रही है। उत्पीड़न और विग्रह के फलस्वरूप अनेकानेक प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। साथ ही ऐसा वातावरण भी बन रहा है, जिसके फलस्वरूप दैवी विपत्तियों का टूटना और विनाश के अविज्ञात कारण बनना स्वाभाविक है।

भौतिक क्षेत्र में भी विषाक्तता बढ़ने के कुछ तथ्य सर्वविदित हैं। वायुमंडल में जिस तरह विघातक विष बढ़ता चला जा रहा है, इसकी जानकारी जनसामान्य को भले न हो, पर विश्व की परिस्थितियों पर बारीक दृष्टि रखने वाले बुरी तरह से चिंतित हैं। बढ़ते हुए औद्योगिक संस्थान, कल-कारखानों से निकलता विषैला धुआँ अपने परिमाण को प्रचुर कर रहा है। वाहनों द्वारा किया जाने वाला विषाक्त उत्सर्जन इसे और भी बढ़ा रहा है। अब तक जो परमाणु कार्यक्रम संपन्न हो चुके हैं, उनका विकिरण पर्यावरण में इतनी बड़ी मात्रा में मौजूद है, जिसका प्रभाव अगली पीढ़ियों के लिए जीवन-संकट उत्पन्न करेगा। इनमें से किसी का भी सिलसिला अभी थम नहीं रहा। विश्व में होने वाले जलवायु सम्मेलन बस, वायदों तक सिमट कर रह जाते हैं।

इसी तरह अंतरिक्ष के संकट भी कम नहीं हैं। अंतरग्रहीय हलचलें अपना प्रभाव सारे वातावरण पर डाल रही हैं। अंतरिक्ष में इन दिनों जो कुछ भी हो रहा है, उसके दूरगामी दुष्परिणाम की चिंता सभी कर रहे हैं। प्राचीन हो या अर्वाचीन, सभी इस तथ्य को समान रूप से स्वीकार करते हैं। उल्काओं के टूटने-गिरने से तात्कालिक हानि तो छोटा प्रश्न है, परंतु इस प्रकरण में चिंता का प्रमुख विषय यह है कि पृथ्वी के वायुमंडल में छेद एवं विक्षोभ उत्पन्न करने वाले ऐसे अंतरिक्षीय प्रहार कैसी प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार के उपद्रवों ने पृथ्वी और सूर्य के मध्यवर्ती ओजोन जैसे उपयोगी आच्छादनों को ध्वस्त-सा कर दिया है।

गुत्थियाँ सूक्ष्मजगत में भी पर्याप्त हैं। चेतना-क्षेत्र और प्रकृति-क्षेत्र, दोनों की ही अपनी अदृश्य परिधि है। उनका प्रभाव प्रत्यक्ष जगत पर पड़ता है। इन अदृश्य क्षेत्रों से विपत्ति बरसने लगे तो उसका उपाय भौतिक उपायों एवं साधनों से नहीं बन पड़ेगा। अदृश्य जगत के सूक्ष्मक्षेत्रों का परिशोधन-समाधान, अदृश्य स्तर की आत्मिक ऊर्जा के सहारे ही बन पड़ना संभव है। इसी प्रक्रिया में अदृश्य प्रयत्नों की कड़ी जुड़ती है। इसका संबंध सूक्ष्मजगत के परिशोधन व अनुकूलन से है।

नवरात्र-साधना पर्व में की जाने वाली गायत्री-साधना इसके लिए विशेष रूप से प्रभावशाली है। इसमें जप और हवन के धर्मानुष्ठान का व्यापक विस्तार होता है। अब इसमें गायत्री परिवार के लाखों नहीं, बल्कि करोड़ों परिजन भागीदार हैं। हालाँकि इसमें रचनात्मक एवं भावनात्मक आधार भी जुड़ते हैं, किंतु प्रमुख रूप से नवरात्र में की जाने वाली गायत्री-साधना का संबंध चेतना जगत के वातावरण और प्रकृति जगत के वायुमंडल के परिशोधन की सूक्ष्मप्रक्रिया के रूप में समझा जा सकता है।

यज्ञ से वायुमंडल एवं जप-ध्यान से वातावरण की शुद्धि होती है। इन अदृश्य आधारों को गणित की तरह से, कागज-कलम द्वारा सिद्ध करना और घटनाक्रम की तरह प्रत्यक्ष करके दिखाना तो संभव नहीं है, पर जो प्रतिक्रियाओं को देखकर तथ्यों का अनुमान लगाने पर विश्वास करते हैं, उन्हें यह जानना व मानना कठिन नहीं है कि इन अदृश्य उपायों का अदृश्य जगत व दृश्य जगत के अनुकूलन पर कितना उपयोगी प्रभाव हो सकता है।

इन प्रयासों को नवरात्र के बाद भी जारी रखा जा सकता है। गायत्री-साधना को अभियान की तरह जितना अधिक अपनाया जाए उतना ही अच्छा है। साधना की यह शृंखला जितने समय तक, और जितने स्थानों पर की जा सके, उतना ही प्रकाश—इक्कीसवीं सदी बिखेरेगी। इसमें किसी के भागीदार होने पर कोई रोक नहीं है। क्षेत्र विस्तृत होता चले और नए व्यक्ति इससे जुड़ते चलें, यह और भी उपयुक्त होगा। नए स्थानों पर इसका छोटा स्वरूप सरलता से बन पड़ेगा। समर्थ शाखाएँ इसका स्वरूप अपनी सामर्थ्य के अनुसार तय कर सकती हैं। गत वर्षों की तुलना में इस बार का नवरात्र कुछ विशेष है। समर्थ एवं सक्षम परिजन इस दायित्व को निभाएँ।

वे इस साधना क्रम को आगे बढ़ाने के लिए समीपवर्ती क्षेत्रों का दौरा करें। धार्मिक प्रवृत्ति के नए लोगों से संपर्क बढ़ाएँ। उन्हें तथ्य समझाएँ और उनकी श्रद्धा उभारें। समर्थ शाखाओं के प्रखर परिजन इससे पहले भी लोगों को गायत्री-साधना और यज्ञ के लिए प्रेरित करते रहे हैं। इस वर्ष, इस संदर्भ में वातावरण-परिशोधन का नया प्रयास, नए आधार पर नई तैयारी के साथ आरंभ करना है। अदृश्य की परिस्थितियाँ सर्वसामान्य को नहीं दिखाई पड़ने की बात तो समझ में आती है, पर दृश्य में जो कुछ घटित हो रहा है, उसे सभी बड़ी आसानी से देख सकते हैं और समझ भी सकते हैं। जो दिखाई दे रहा है, किसी को उसकी अनदेखी नहीं करनी चाहिए, बल्कि इस दृश्य के अदृश्य आयामों की खोज-बीन करनी चाहिए।

ऐसा करने पर सत्य उजागर होगा। सहजता से समझ में आ सकेगा कि सूक्ष्म में उपजी विकृतियाँ ही स्थूलजगत में विष की विषैली बेलों को जन्म दे रही हैं और उन्हें बढ़ा रही हैं। गायत्री-साधना का अमृत सिंचन ही इस विषाक्तता से छुटकारा दिला सकता है। इसीलिए इस नवरात्र पर साधना-क्षेत्र के वरिष्ठों का ध्यान इस स्तर का पुरुषार्थ करने के लिए प्रथम बार आकर्षित किया गया है। आत्मबल के बलिष्ठों को सामूहिक शक्ति का अर्जन करने और उसे विश्वमानवता के संकट के निवारण के निमित्त झोंक देने का यही सही सुअवसर है। इससे संकट के घटाटोप अपना घमासान मचाने में सफल नहीं हो सकेंगे। अपने सभी परिजन इस हेतु साधना में संलग्न होंगे तो आशंकाओं का निर्मूल होना सहज संभव होगा। गायत्री परिवार के परिजनों में अधिकांश का साधना

के लिए अत्यंत उत्साह रहता है। इस नवरात्र में उसका समर्थ प्रयोग किया जाना चाहिए।

आशंकाओं के पर्वत इक्कीसवीं सदी के इस सत्रहवें वर्ष में भी जहाँ-के-तहाँ खड़े हैं। समय-समय पर कतिपय भविष्यवक्ता अशुभ संभावनाओं को जाहिर करते रहते हैं। प्रत्यक्ष का विवेचन करने वाले लोगों के प्रतिपादन भी इसी को स्पष्ट करते हैं। इसके निराकरण का वास्तविक एवं कारगर उपाय, आध्यात्मिक शक्ति के दिव्य आयुधों व दिव्यास्त्रों के प्रयोग से ही संभव हो सकता है। प्रचंड आसुरी शक्तियों द्वारा उत्पन्न की गई विषमताओं व विभीषिकाओं से लोहा लेने की सामर्थ्य मात्र उसी में है।

गायत्री परिवार के परिजन, साधना-प्रयासों के अभ्यस्त हैं। इस नवरात्र पर उसे और भी संशोधित व परिष्कृत रूप में चलाने के लिए कहा गया है। इच्छा होने पर ये प्रयोग सामूहिक रूप से किए जा सकते हैं। एक स्थान पर एकत्रित होना यदि संभव न हो सके तो एक ही समय पर लोग अपने-अपने घरों में इसे कर सकते हैं। सबकी संयुक्त साधना से ही यह परिणाम संभव होगा, जो व्यापक वातावरण को प्रभावित करने लायक योगदान दे सकेगा। जिनकी साधनाएँ पिछले समय से निष्ठापूर्वक चल रही हैं, जो कई अनुष्ठान कर चुके हैं और दूसरों को प्रेरणा देने में जिनकी प्रतिभा कारगर साबित होती रही है, उन्हें इस साधना में अग्रणी भूमिका निभानी चाहिए। वे साथी दूसरों को भी बना सकते हैं, सहयोग दूसरों का भी ले सकते हैं, किंतु इस हेतु अग्रणी भूमिका निभाने के लिए उन्हें ही तत्पर रहना होगा।

इस साधना से जुड़ी हुई ध्यान-प्रक्रिया बस इतनी है कि गायत्री परिवार के करोड़ों सदस्य अपनी प्रचंड आत्मऊर्जा को एक साथ, एकबारगी, एक लक्ष्य की पूर्ति के लिए इसे उत्पन्न कर रहे हैं। इससे सबकी एक समवेत संकल्पशक्ति ऊपर उठती है और अंतरिक्ष की ऊँची परतों पर छतरी की तरह छा जाती है। इससे वातावरण और वायुमंडल में भरे हुए दूषित तत्त्व धरती पर गिरने से पूर्व ही नष्ट हो जाते हैं। संयुक्त आत्मशक्ति का छाता उन्हें न केवल ऊपर ही रोक लेता है, बल्कि नष्ट भी कर देता है। इतना हीं नहीं, इस छत्र उपकरण के प्रहार से अदृश्य जगत पर छाई हुई विभीषिका को किसी अविज्ञात क्षेत्र में धकेलकर भावी विपत्तियों से बहुत हद तक परित्राण पाया जाता है।

इस नवरात्र-साधना से गायत्री जप के साथ यह ध्यान-प्रक्रिया भी जोड़ी जानी चाहिए। साथ ही सभी के साधना क्रमों को नियमित रूप से चलना चाहिए और चलते रहना चाहिए। इस प्रयास से असुरता के लिए निश्चित ही समर्थ प्रतिरोध उत्पन्न होगा। आशा की जानी चाहिए कि गायत्री परिवार का यह समर्थ ब्रह्मास्त्र, युग विभीषिकाओं को निश्चित ही निरस्त करेगा। इसके माध्यम से इक्कीसवीं सदी में उज्ज्वल भविष्य की संभावनाएँ शीघ्र साकार होंगी। परिजनों की प्रज्ञा, श्रद्धा व निष्ठा इस शारदीय नवरात्र के साधना उत्सव में घुलकर विपदाओं के विध्वंस व उज्ज्वल भविष्य के सृजन की दोहरी भूमिका को अवश्य निभाएँगी। ❑

महर्षि उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु अत्यंत प्रतिभाशाली थे। गुरुकुल में निरंतर बारह वर्षों तक शास्त्रों का अध्ययन करने के उपरांत जब वे महर्षि के पास लौटे तो उन्होंने उनसे प्रश्न किया—"वत्स! वह क्या है, जिसका ज्ञान होने से सृष्टि के समस्त पहलुओं का ज्ञान हो जाता है।" इस प्रश्न का उत्तर श्वेतकेतु से न देते बना तो उनकी जिज्ञासा का समाधान करते हुए महर्षि उद्दालक बोले—"पुत्र! जिस प्रकार स्वर्ण का ज्ञान हो जाने से स्वर्ण से बनी सभी वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है, कृषि का ज्ञान हो जाने से सभी अन्य पदार्थों को उपजाने का ज्ञान हो जाता है, वैसे ही आत्मा का ज्ञान हो जाने से सृष्टि के समस्त पहलुओं का ज्ञान हो जाता है। तुम अब अपना जीवन उसी आत्मज्ञान को प्राप्त करने में लगाओ।"

►युवाक्रांति वर्ष◄

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु

शुक्ल यजुर्वेद के रुद्राष्टाध्यायी में सूत्र है—**'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु'** अर्थात हमारा मन शुभ संकल्प वाला हो। संकल्पशक्ति में बहुत ताकत होती है। परमात्मा के संकल्प से ही यह सृष्टि बनी है, संकल्प से ही किसी कार्य की शुरुआत होती है और उसे पूर्णता भी संकल्प शक्ति से ही मिल पाती है। यदि संकल्प कमजोर पड़ता है, संकल्प टूटता है, मन में संशय आता है, तो फिर कार्य पूरे नहीं हो पाते।

संकल्प, इनसान को अपार उत्साह और अदम्य साहस से भर देता है, जिससे वह अपने लक्ष्य को पूर्ण मनोयोग से प्राप्त कर पाता है। महात्मा गांधी ने अहिंसा, सद्भावना, प्रेम, शांति और सामंजस्य बनाए रखने का संकल्प लिया और इसका जीवनपर्यंत पालन भी किया। इसी कारण वे भारतीय स्वाधीनता आंदोलन को सफल कर पाए। मन की स्थिरता और एकाग्रता ही संकल्पशक्ति को और दृढ़ता प्रदान करती हैं। मन जितना बिखरा हुआ होता है, संकल्प में भी उतनी ही दरारें आ जाती हैं।

संकल्प यदि दृढ़ है तो उसके समक्ष बाधाएँ भी आने से घबराती हैं और सामान्य व्यक्ति भी असामान्य कार्य कर गुजरता है। संकल्प है तो व्यक्ति कहीं पर भी, किसी भी स्थिति में अपने पैरों पर खड़ा हो जाता है, फिर साधन-सुविधाएँ उतना अर्थ नहीं रखतीं। संकल्प यदि दृढ़ है तो व्यक्ति का छोटा-सा भी प्रयास क्रांति ला सकता है। जैसे—महामना मदनमोहन मालवीय काशी हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए कृतसंकल्पित थे और उसी संकल्प बल के परिणामस्वरूप वे इतना उल्लेखनीय कार्य कर पाने में सक्षम हो सके। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने अपने संकल्प बल से ही इतना बड़ा और व्यापक 'गायत्री परिवार' स्थापित किया, जो निरंतर नई ऊँचाइयों को उपलब्ध हो रहा है।

संकल्प की शक्ति के माध्यम से मनुष्य पर्वतों का भी रुख मोड़ सकता है। बड़ी-से-बड़ी समस्याएँ भी संकल्पशक्ति के समक्ष झुक जाती हैं। इसके विपरीत जिनके संकल्प कमजोर होते हैं, वे अपना विनाश खुद कर लेते हैं। व्यक्ति का आध्यात्मिक जीवन भी इसी संकल्पशक्ति की नींव पर खड़ा होता है। संकल्पशक्ति कमजोर है तो मनुष्य महत्त्वपूर्ण सफलता नहीं पा सकता, आत्मनिर्भर नहीं बन सकता और फिर आध्यात्मिक उपलब्धियाँ तो और दूर चली जाती हैं।

अथर्ववेद में इस आशय का एक सूत्र आता है—**यो वः शुष्मो हृदयेष्वंतराकूतिर्या वो मनसि प्रविष्टा। तान्त्सीवयामि हविषा घृतेन मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु॥** अर्थात—''हृदय का बल और मन का संकल्प एक दिशा में लगते हैं तो हर काम अच्छी तरह पूरा हो सकता है। संकल्पशक्ति से ही व्यक्ति, राष्ट्र, जाति और संस्कृति अजेय बनते हैं।''

शरीर में निवास करने वाली जीवात्मा के पास पाँच कर्मेंद्रियाँ और पाँच ज्ञानेंद्रियाँ हैं, पर इनकी क्षमता सीमित है। लेकिन ग्यारहवीं इंद्रिय जो मन है, वही सबसे प्रमुख है और इन सबसे शक्तिशाली है। इस मन से ही जीवात्मा अपनी इच्छाएँ और अपने संकल्प को व्यक्त करती है। मन की शक्ति, आत्मा को भी इच्छाओं के जाल में बाँधकर लोक-लोकांतरों में बाँधे फिरती है। मन की इस चंचलता को वश में करना, संकल्प के ही वश में है; क्योंकि संकल्प, आत्मा की शक्ति है। संकल्पशील यानी सत्य का निष्ठापूर्वक पालन करने वाले ही आत्मा को जानते हैं।

संशयात्मा विनश्यति—अर्थात जिनके मन में संशय होता है, जो दृढ़ संकल्प नहीं कर सकते, वे स्वयं अपना ही विनाश कर लेते हैं। साधारण लोग किसी भी उद्यम-उद्योग में इसलिए सफल नहीं हो पाते; क्योंकि उनका ध्यान बिखरा हुआ होता है। वही काम जब पूरे मनोयोग से किया जाता है, तो मानसिक शक्ति तेजी से कार्य करने लगती है और अनेक ऐसी बातें सूझने लगती हैं, जिनसे सफलता की संभावना बढ़ जाती है।

यदि मन को वश में कर लिया जाए और इसकी ऊर्जा निर्दिष्ट दिशा में बहती रहे तो शरीर को होने वाले कष्टों और पीड़ाओं का भी भान नहीं होता। इसका एक

उदाहरण बाल गंगाधर लोकमान्य तिलक जी का है। एक बार उनके अँगूठे का ऑपरेशन होना था। डॉक्टर उनके ऑपरेशन के लिए क्लोरोफॉर्म लेकर पहुँचे, ताकि इसे सुँघाकर वे उन्हें बेहोश कर सकें, जिससे उन्हें ऑपरेशन में दरद न हो, लेकिन तिलक ने डॉक्टरों को मना करते हुए कहा कि मुझे भगवद्गीता की एक प्रति ला दीजिए। डॉक्टरों ने उन्हें भगवद्गीता की पुस्तक दे दी। कुछ ही क्षणों में वे गीता पढ़ने में इतने तल्लीन हो गए कि उन्हें पता ही नहीं चला कि कब ऑपरेशन हो गया।

संकल्पशक्ति के अनेक आश्चर्यचकित करने वाले चमत्कार भी देखने को मिलते हैं, जैसे—महापुरुषों द्वारा वर्षा रोक देना, बहते हुए जल-प्रवाह को बाधित कर देना, भारी शिलाखंड को उठा लेना आदि। जैसे—एक साधु गोविंद स्वामी के विषय में सर अडियार ने लिखा है कि जल से भरे हुए घड़े को स्वामी जी ने जब आदेश दिया, तो वह धरती से डेढ़ फीट तक ऊँचा उठ गया। एक बार जब महर्षि गालव ने अपने आश्रमवासियों को प्यास से मरते देखा, तो पर्वत को जल देने का आदेश दिया। कहते हैं कि उन्होंने जैसे ही संकल्प लिया, वैसे ही पहाड़ के भीतर से एक जलधारा निकल आई। यह स्थान जयपुर में आज भी गलता जी के नाम से प्रसिद्ध है। चित्रकूट पर्वत में स्थित अत्रि-अनसूया आश्रम में भी एक बार जब अकाल पड़ गया था, कहीं पर भी जल-बूँदें नहीं थीं और अत्रि ऋषि भी तपस्या हेतु आश्रम से बाहर गए हुए थे, तब लोगों की करुण पुकार सुनकर, उनकी सहायता हेतु माता अनसूया ने अपनी संकल्पशक्ति से (तपोबल से) गंगा की एक जलधारा उत्पन्न की, जो मंदाकिनी कहलाई, जिसने प्यास से आकुल लोगों की प्यास बुझाई।

केवल आध्यात्मिक चमत्कार ही नहीं, शारीरिक पुरुषार्थ के भी चमत्कार इसी संकल्पशक्ति से देखने को मिलते हैं, जैसे—झारखंड के गहलौर गाँव के एक मजदूर दशरथ मांझी जिन्हें 'माउंटेन मैन' के नाम से भी जाना जाता है, केवल अपने छेनी-हथौड़े जैसे छोटे औजारों से पहाड़ को काटकर रास्ता बना दिया। यह रास्ता ३६० फीट लंबा और ३० फीट चौड़ा था। २२ वर्षों के अथक परिश्रम के बाद उनकी बनाई हुई सड़क से ५५ किलोमीटर की दूरी महज १५ किलोमीटर में सिमट गई। यह घटना तो इसी समय की है। इस तरह इतिहास में संकल्पशक्ति के अनेकों अद्भुत उदाहरण मिलते हैं।

संकल्पशक्ति वह कहलाती है, जो जीवन को नया रुख देती है और मार्ग में आने वाली विकराल बाधाओं को पत्तों की तरह उठा फेंकती है। पथरीली भूमि को भी तोड़कर, बीज इसी संकल्पशक्ति से अंकुरित हो सकता है, वृक्ष बन सकता है। संकल्पशक्ति के द्वारा कोई भी अपने जीवन को शिखर तक पहुँचा सकता है। संकल्प जिनके पास होता है, वे ही महापुरुष बन पाते हैं और महान कहलाते हैं। ❑

एक राजा पंडितों, विद्वानों से प्रायः प्रश्न किया करते थे कि संसार में सबसे बड़ा कर्त्तव्य क्या है? इन प्रश्नों के उत्तर में विद्वानों ने उन्हें विभिन्न उत्तर दिए, पर किसी के भी उत्तर से राजा संतुष्ट नहीं हो पाए। एक दिन वे शिकार खेलने जंगल में गए। एक जानवर का पीछा करते-करते वे रास्ता भटक गए। भीषण गरमी के कारण उन्हें चक्कर आने लगा। खोज करने पर उन्हें एक आश्रम दिखाई पड़ा, जहाँ एक संत ध्यानस्थ थे। राजा उन्हें पुकारते हुए बेहोश हो गए। होश में आने पर उन्होंने देखा कि संत उनके मुख पर पानी के छींटे मार रहे हैं। राजा ने विनम्रता से कहा—"भगवन्! आप तो समाधि में लीन थे। आपने मेरे लिए समाधि क्यों भंग की?" संत ने राजा से कहा—"राजन्! आपके प्राण संकट में थे। ऐसे समय में मेरे लिए ध्यान की अपेक्षा आपकी सहायता के लिए तत्पर होना ज्यादा महत्त्वपूर्ण कार्य था। समय और परिस्थिति को देखते हुए ही कर्त्तव्य का निर्धारण करना चाहिए।" उनके इस कथन से राजा की जिज्ञासा भी शांत हो गई कि सर्वोपरि कर्त्तव्य का निर्णय परिस्थिति को देखकर ही किया जा सकता है।

अहंकार है अँधियारा, समर्पण है उजियारा

कैकेयी की आँखें अश्रुओं से भीगी हुई थीं। उनके मुख से स्वर भी काँपते हुए निकल रहे थे। मुख पर विषाद की रेखा और अंतस् में ग्लानि का भाव था। वे इसी भाव को लिए भगवान राम के सम्मुख उपस्थित होने जा रही थीं। मन-ही-मन उन्हें लग रहा था कि वे किस मुख से प्रिय श्रीराम का सामना करेंगी। एक समय जिस मुख से उन्होंने श्रीराम के लिए महाराज दशरथ से वनवास माँगा था, आज उसी मुख से कैसे उनके सम्मुख अपने मन की वेदना व्यक्त करूँगी?

मन-ही-मन वे सोच रही थीं कि उस समय उनके मन पर ऐसी क्या दुर्बुद्धि छा गई थी, जिसके परिणामस्वरूप उनके मुख से निकले शब्दों के कारण महाराज दशरथ को प्राणों का त्याग करना पड़ा, भगवान श्रीराम को सीता व लक्ष्मण सहित वर्षों तक वनवास के व राक्षसराज रावण से युद्ध जैसे भीषण समय को सहन करना पड़ा और स्वयं उनका पुत्र भरत भी उनसे दूर हो गया। ये सारे विचार उनके मन में झंझावात की तरह चल रहे थे। कहीं अनजाने में एक भय भी था कि न जाने श्रीराम उनके साथ किस तरह का व्यवहार करें?

अपने मन में इस तूफान को समेटे हुए, काँपते हुए शरीर व ग्लानि से भरे मन के साथ वे भगवान श्रीराम के सम्मुख उपस्थित हुईं। अभी कल ही तो भगवान श्रीराम लंकाविजय करके सीता व लक्ष्मण के साथ अयोध्या पधारे थे। सारी अयोध्या नगरी एक उत्सव के माहौल में डूब-सी गई थी। नगर के सभी नागरिक, चाहे वे युवा हों या वृद्ध, चाहे वे बच्चे हों या महिलाएँ—सभी इस उत्सव के रंग में रँगकर स्वयं को धन्य महसूस कर रहे थे।

ऐसे समय में किसी दुःखद विषय पर चर्चा करना कैकेयी को उचित तो नहीं लग रहा था, परंतु उनके मन पर भार ही इतना ज्यादा था कि उन्हें लगा कि यदि इस समय वे अपने प्रिय श्रीराम से इन भावों को व्यक्त नहीं करेंगी तो कहीं कुछ दूसरा अनर्थ न कर बैठें। बहुत ही सकुचाते हुए भावों के साथ वे राजदरबार पहुँचीं। उनके पहुँचते ही सभी की दृष्टि उनकी ओर उठ गई।

जो शंका का भाव कैकेयी के मन में था, वह भाव राजदरबार में उपस्थित अन्य सदस्यों के मन में उत्सुकता बनकर प्रकट हो रहा था। सभी यह जानना चाहते थे कि भगवान श्रीराम, कैकेयी के साथ किस तरह का व्यवहार करेंगे? कुछ को लगा कि वे कहीं क्रोध में उन्हें प्राणदंड का आदेश ही न दे डालें तो कुछ ऐसा सोचते थे कि भगवान श्रीराम भले ही कैकेयी को कोई क्रूर दंड न भी दें तो भी उन्हें, उनको एक उचित दंड देने का अधिकार तो अवश्य है।

परंतु वहाँ जो घटा, वह सबकी आशाओं व आशंकाओं के विपरीत था। स्वयं कैकेयी भी श्रीराम से ऐसे व्यवहार के लिए तैयार न थीं। कैकेयी को दरबार में प्रवेश करते देख भगवान श्रीराम अपने स्थान से उठे और 'माँ' कहते हुए उनकी ओर बढ़ चले। उन्होंने कैकेयी को राजकक्ष में प्रवेश करने से पूर्व ही रोक-सा लिया व उनके चरणस्पर्श करते हुए उन्हें अपने हाथों का सहारा देते हुए दरबार में ले आए व सर्वोच्च आसन पर बिठा कर इस तरह से सम्मान दिया, मानो वे उन्हीं की प्रतीक्षा में वहाँ बैठे हों।

इतना प्रेमपूर्ण व सम्मानजनक सत्कार पाकर कैकेयी तो बिलख ही पड़ीं। बड़ी मुश्किल से उनके मुख से इतना ही निकल पाया—"नहीं श्रीराम! मैं इतने सम्मान की अधिकारी नहीं हूँ। तुम्हारी ही नहीं, मैं पूरी अयोध्या की अपराधी हूँ। मेरे कारण तुमने, सीता ने और लक्ष्मण ने ही नहीं, वरन अयोध्या की सारी प्रजा ने इतने सारे वर्षों तक अनेक कष्टों को सहा है। मुझे दंड दो, पुरस्कार नहीं।"

प्रत्युत्तर में भगवान श्रीराम हलका-सा मुस्कराए और बोले—"माँ! व्यक्ति तो मात्र कर्मों का परिणाम प्रदान करने का माध्यम बन जाता है, शेष सब काल की इच्छा से ही घटता है। आपके मुख से जो निकला, यदि वह न निकला होता तो आज आर्यावर्त को असुरता के आतंक से मुक्त कर पाना संभव न हो पाता। यह दंड नहीं, पुरस्कार-योग्य ही कार्य है।"

भगवान श्रीराम के शब्द धीरे-धीरे गंभीर हो रहे थे। वे आगे बोले—"माँ! सामान्य क्रम में हम लोग व्यक्ति को किसी कार्य का कारण समझते हैं और उससे प्रतिशोध लेने की या उसका प्रत्युपकार करने की सोचते हैं; जबकि इस सृष्टि के शाश्वत सत्यों में से एक सत्य यह है कि मनुष्य को जीवन में जो परिस्थितियाँ मिलती हैं, वो उसके द्वारा पूर्व में कृत शुभ व अशुभ कर्मों के कारण ही मिलती हैं। कुछ हमारे पूर्वसंचित कर्म थे, जिनका परिणाम हमें दिलाने के लिए उस दिन माँ सरस्वती आपकी जिह्वा पर आ बैठीं और इतनी कल्याणकारी प्रार्थना आपके मुख से निकल पड़ी, जिससे समूची मानवता का कल्याण ही हो गया।"

भगवान श्रीराम के शब्दों में गंभीरता थी और साथ ही एक अद्‌भुत प्रेम भी। भावनाएँ सकारात्मक होती हैं तो प्रेम बन जाती हैं और प्रेम, पवित्रता से जुड़ता है तो एक अद्‌भुत प्रभाव सुनने वाले पर छोड़ता है। यदि भगवान श्रीराम के शब्द मात्र शब्द होते तो उनके द्वारा रानी कैकेयी के मन के भार को हलका कर पाना संभव न था, पर उनके द्वारा कहे गए शब्द इतनी आत्मीयता के साथ सिक्त थे कि रानी कैकेयी ने दशकों पुराने अपने मन के भार को सहजता से हलका होता अनुभव किया।

वे बोलीं—"श्रीराम! तुम्हारे इस प्रेम ने मेरे मन के भार को तो हलका कर दिया है, परंतु अब मैं स्वयं को इस राजमहल में रहने का अधिकारी नहीं पाती हूँ। इतने वर्षों तक मात्र तुम्हें दोबारा देखने की उत्कट अभिलाषा थी, जिसके कारण अब तक यहाँ रुकी रही, परंतु अब वन को जाना चाहती हूँ। जीवन के अंतिम वर्षों में अंतस् में बोध जग जाए, यही एकमात्र कामना है।"

भगवान श्रीराम बोले—"यदि आपकी ऐसी इच्छा है तो मैं आपको रोकूँगा नहीं, परंतु यह कहूँगा कि यदि आप आत्मज्ञान की अभिलाषा रखती हैं तो मार्ग में पड़ने वाले खेत में भ्रमण कर रही भेड़ों से एक बार वार्तालाप करके देखें, संभवतया वे ही किसी महत्त्वपूर्ण ज्ञान का स्रोत बन जाएँ। मैं लक्ष्मण से कह देता हूँ, वे आपको सुरक्षित वन तक छोड़ आएँगे।" लक्ष्मण के वन ले जाने की बात तो कैकेयी समझ सकीं, परंतु भेड़ों से वार्तालाप करने की बात को सुनकर उन्हें ऐसा लगा कि मानो श्रीराम ने उनसे कोई परिहास किया हो। उन्होंने यह सोचकर मन को समझाया कि संभव है उनके परिहास में भी कोई गंभीर सत्य सन्निहित हो।

अगले दिन लक्ष्मण ने भगवान श्रीराम के दिए निर्देश का अक्षरशः पालन किया। उन्होंने अपना रथ निकलवाया, सारथी के स्थान पर स्वयं बैठे और रानी कैकेयी को लेकर वन की ओर चल निकले। कैकेयी ने चलते समय लक्ष्मण से पूछा—"पुत्र लक्ष्मण! क्या श्रीराम ने तुमसे कोई संकेत किया है? मैं भेड़ों से वार्तालाप करने के उद्‌देश्य को समझ नहीं पा रही हूँ।" लक्ष्मण बोले—"माँ! मेरे लिए तो वे प्रभु समान हैं। मैं उनके कहे के उद्‌देश्य को जानने का प्रयत्न कभी नहीं करता, मात्र उनके कहे को पूरा करने की सोचता हूँ। उन्होंने कहा है तो जरूर कोई उद्‌देश्य उसमें सन्निहित होगा। आप चिंता न करें।"

लक्ष्मण के शब्दों से रानी कैकेयी को थोड़ी सांत्वना मिली। जैसा निर्दिष्ट था, वैसा पालन करते हुए लक्ष्मण ने रानी कैकेयी को मार्ग में पड़ने वाले खेत में ले जाकर खड़ा कर दिया। वहाँ कुछ भेड़ें चर रही थीं। कैकेयी उनके पास जाकर एक पत्थर पर बैठ गईं और उन्हें ध्यान से देखने लगीं। कुछ समय के उपरांत उनकी आँखें मुँद-सी गईं और मन ध्यानमग्न हो गया। इस समय मात्र भेड़ों की 'में-में' करती हुई आवाजें उनके कानों से टकरा रही थीं।

कुछ देर यों ही बैठे रहकर वे एकदम तीव्रता से उठीं और लक्ष्मण से बोलीं—"पुत्र! वापस अयोध्या चलो। जिस ज्ञान की तलाश में मैं वन जाना चाहती थी, वह भगवान श्रीराम ने मुझे यहीं खेत में उपलब्ध करा दिया है। आज ये भेड़ें ही मेरी गुरु बन गई हैं। मैं राम को धन्यवाद देना चाहती हूँ कि आज उन्होंने मेरे मन में ज्ञान का द्वार खोल दिया है।"

अयोध्या पहुँचते ही रानी कैकेयी, भगवान श्रीराम के पास पहुँचीं और नतमस्तक होते हुए बोलीं—"पुत्र! तुमने आज मुझे शाश्वत ज्ञान का अधिकारी बना दिया। मैं समझ गई हूँ कि समस्त अज्ञान के मूल में अहंकार ही है। यह 'मैं-मैं' का भाव ही जीवात्मा को जन्म-जन्मांतरों तक भटकाता है। जितना ज्यादा अहंकार बढ़ता है, उतने ही अधिक अज्ञान के मार्ग जीवन में खुलते हैं। जिस दिन हम इस 'मैं' को भूलकर उस परमपिता परमात्मा को समर्पित हो जाते हैं, उस दिन हृदय से सच्ची प्रार्थना का उदय होता है। यही सच्चा ज्ञान है।" रानी कैकेयी का मुख आनंदमग्न था और भगवान श्रीराम उन्हें जीवन की दिशा दिखाते हुए धीमे से मुस्करा रहे थे। ❑

►युवाक्रांति वर्ष◄
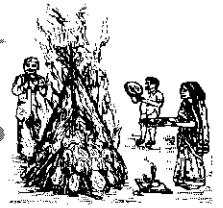
भारतीय संस्कृति का हर पर्व-त्योहार अनेकता में एकता का संदेश देता है, फिर चाहे वह रिश्तों की डोर प्रगाढ़ करने के लिए रक्षाबंधन का पर्व हो, या आतंक का शमन करने वाला पर्व दशहरा हो, फिर चाहे वह फैले हुए अँधेरे को दूर भगाने व प्रकाश फैलाने का पर्व दीपावली हो या फिर भेदभाव, बुराई को मिटाने वाला, सद्भाव बढ़ाने वाला पर्व होली हो। भारत के सभी पर्व-त्योहार ऐसे हैं, जो देशवासियों को एकता के सूत्र में पिरोते हैं। सभी देशवासी अपने-अपने ढंग से इन्हें मनाते हैं।

इन पर्व-त्योहारों में होली ही एकमात्र ऐसा पर्व है, जिसमें सभी देशवासी ऐसे रंग में रँग जाते हैं, जिसमें सभी एक जैसे दीखते हैं, एक स्तर पर खड़े होते हैं। भेदभाव किसी में नहीं रहता, न जात-पाँत का, न सुंदर-कुरूप का, न ऊँच-नीच का, न अमीर-गरीब का। सभी दूर से एक जैसे दीखते हैं, इसमें व्यक्ति की निजी पहचान खतम होती है और केवल एक पहचान बचती है कि वह मनुष्य है, वह देशवासी है।

सबको एकता के रंग में रँगने वाला, अपने सुंदर रंगों से सजाने वाला होली का पर्व वास्तव में अनेकार्थ को अपने में समेटे हुए है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो मन की गहरी परतों में छिपे हुए कई ऐसे अच्छे-बुरे भाव होते हैं, जिन्हें व्यक्ति छिपाकर रखता है, सहजता से उजागर नहीं करता, लेकिन होली के पर्व में इसकी धुन में, खेल-खेल में, व्यक्ति अपने अंदर का सब कुछ बाहर निकाल देता है, होली खेलने में जो मनमयूर नाचता है, गीतों की फुहार उठती है, नगाड़े संग सब मिलकर झूमते हैं, खुशियाँ मनाते हैं, एकदूसरे पर रंग उँड़ेलते हैं—यह सब प्रक्रिया मन की कालिमा को दूर करती है, उसे धोती है, उसे नए रंगों से सजाती है, मन को निर्मल, स्वच्छ व सुंदर बनाती है। दूसरे शब्दों में होली को मन के मैल धोने का पर्व कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी, क्योंकि यह पर्व एक तरह से हमारे मन-मालिन्य को धोने ही आता है।

होली के पर्व में जिन विविध रंगों का उपयोग किया जाता है, वह इसलिए, ताकि इन्हें रँगकर हम अपने अंदर चढ़ी हुई दुर्भावों की मलिनता को दूर कर सकें, खूबसूरत रंगों की खुशबू से अपने अंदर के अवगुणों की दुर्गंध को हटा सकें। खूबसूरत रंगों व इसकी सुगंध से अपने मन को ताजा कर सकें, ताकि हमारा मन फिर से नया हो जाए, तरोताजा हो जाए।

होली ही एकमात्र ऐसा पर्व है, जिसे खेला जाता है। वैसे खेल तो बच्चे खेलते हैं, लेकिन इस होली के पर्व में बच्चे, बूढ़े, जवान सभी खेलते हैं, अपने-अपने ढंग से खेलते हैं, सभी के खेलने का तरीका अलग होता है। जिस तरह खेलने से ताजगी मिलती है, उत्साह मन में जगता है, उसी तरह होली का पर्व सभी के मन को उत्साह के रंग से सराबोर कर देता है। इसमें खेलने के लिए रंगों का प्रयोग होता है और होली के रंग खेलने में खासियत एक ही होती है कि इसे खेलने के लिए कोई नियम नहीं होता, कोई कायदा नहीं होता, कोई कानून नहीं होता, बस, इसमें यही ध्यान रखा जाता है कि जो भी खेला जाए, वह नैतिकता के दायरे में हो, अनैतिक न हो।

होली वसंत ऋतु का पर्व है। वसंत को ऋतुराज भी कहते हैं। इस ऋतु में मौसम बड़ा ही सुहावना होता है। चारों ओर प्रकृति नवीनता ओढ़ती है, पुराने और सूखे पत्ते पतझड़ में झड़ जाते हैं, पेड़ों में नई कोपलें फूटती हैं, विभिन्न सुंदर फूलों से प्रकृति शोभायमान हो जाती है, मनमोहक फूलों की सुगंध चारों ओर फैलती रहती है। आम के पेड़ों में बौर आ जाता है, जिसकी मीठी खुशबू चारों ओर बिखरती है, इस खुशबू की मादकता में कोयल भी कूकने से अपने आप को रोक नहीं पाती और कोयल का मधुर संगीत जब कभी भी प्रकृति में अपनी मिठास घोलता है, सुनने वाले का मन आनंदित होता है।

इस तरह वसंत ऋतु में प्रकृति का संपूर्ण शृंगार होता है और होली का पर्व इस ऋतु में चार चाँद लगा देता है। प्रकृति तो शृंगार करती ही है, मनुष्य भी इस पर्व में होली खेलकर विविध रंगों से स्वयं को सजा लेता है।

►युवाक्रांति वर्ष◄

इस तरह होली में वसंत की महक और फाल्गुन के उत्सव का ऐसा सुरम्य वातावरण धरती पर बरसता है, मानो स्वर्ग की सुंदरता भी इसके आगे फीकी हो।

होली का पर्व केवल रंग-गुलाल खेलने तक ही सीमित नहीं रहता, इसमें रसास्वादन करने के लिए पकवानों, मिष्टान्नों की भी भरमार होती है। विशेष रूप से मिष्टान्नों में गुझिया और पेय में ठंढाई का इस पर्व में विशेष स्थान है। अन्य तरह के पकवान व व्यंजन भी इसमें बनाए जाते हैं और होली-मिलन के अवसर पर इन्हें परोसा जाता है , इन्हें खिलाकर लोगों को होली की बधाइयाँ दी जाती हैं।

होली पर्व की इतनी सारी विशेषताएँ हैं, लेकिन समय के साथ इसमें कई बुराइयाँ भी प्रवेश कर गई हैं। जैसे—कई जगह होली के पकवानों, मिष्टान्नों व पेय में भाँग मिला दी जाती है, जिससे व्यक्ति को नशा चढ़ जाता है और फिर उसे होश नहीं रहता। भाँग व अन्य नशीले पदार्थों के मिलावट के डर से लोग होली पर्व पर कहीं भी कुछ खाने में परहेज करते हैं। इसके कारण इस पर्व पर किसी भी तरह के व्यंजन संदेह के दायरे में आते हैं और यह स्वास्थ्य व समाज, किसी के लिए भी हितकर नहीं है। अतः होली पर्व पर भाँग व अन्य किसी भी प्रकार के नशे का त्याग करना चाहिए।

इसके साथ ही आजकल होली खेलने वाले गुलाल व रंग में ऐसे रसायनों का प्रयोग होने लगा है, जो हमारी त्वचा को नुकसान पहुँचाते हैं, माथे पर लगाने से सिरदरद का कारण बनते हैं, इनके रंग आँख-कान को भी नुकसान पहुँचाते हैं, अतः इनसे बचने के लिए प्राकृतिक रंगों से ही होली खेलना उचित है।

होली में सब मिलकर झूमते हैं, रंग खेलते हैं, नाचते-गाते हैं, लेकिन समाज के अवांछनीय तत्त्व जब इसमें मिल जाते हैं तो हुड़दंग करते हैं, जोर-जबरदस्ती करते हैं, इनके होली खेलने का ढंग ऐसा होता है कि व्यक्ति होली खेलने के नाम से भी भयभीत होता है। अतः हमें होली खेलने का वातावरण ऐसा बनाना चाहिए कि सब उसे खेलने के लिए उत्सुक हों, न कि उससे बचने के लिए उपाय ढूँढ़ें। ❑

एक जमींदार का घोड़ा बूढ़ा हो गया था। एक दिन वह घास चरता हुआ दूर निकल गया और एक कुएँ में जा गिरा। कुआँ सूखा था। घोड़ा उससे बाहर निकलने के लिए प्रयत्न करने लगा, लेकिन बाहर न निकल सका। जमींदार को पता चला तो वह उसे देखने कुएँ पर गया। वहाँ उसने सोचा कि उस बूढ़े घोड़े को निकालने से क्या फायदा? उसने उसे कुएँ में ही दफनाने के लिए मजदूरों को बुलाया और उन्हें कहा कि वे घोड़े के ऊपर मिट्टी डालकर उसे वहीं मरने के लिए छोड़ दें।

जब घोड़े पर मिट्टी पड़ने लगी तो वह समझ गया कि उसके मालिक ने उसे वहीं दफन करने का निर्णय लिया है। उसने भी बचने की तरकीब ढूँढ़ निकाली। जब भी उस पर मिट्टी पड़ती तो वह उछल पड़ता। मिट्टी उसके नीचे पहुँच जाती और वह मिट्टी के ऊपर। उस पर मिट्टी पड़ती रही और वह उछलकर ऊपर आता रहा। अंततः कुआँ मिट्टी से भर गया और घोड़ा कुएँ से बाहर निकल आया। इस प्रसंग से हमें शिक्षा मिलती है कि परिस्थितियाँ चाहे कितनी भी प्रतिकूल क्यों न हों, हमेशा उनसे बचाव का कोई-न-कोई उपाय अवश्य होता है।

पर्यटन के बदलते आयाम

पर्यटन आज की दुनिया का एक अभिन्न अंग है। खूबसूरत वादियों, ऐतिहासिक इमारतों व प्राकृतिक नजारों को देखने के लिए सुदूर स्थानों से लोग आते हैं, घूमते-फिरते हैं, वहाँ कुछ दिनों के लिए रहते हैं, फिर चले जाते हैं। इस प्रक्रिया में कुछ या अधिक आर्थिक व्यय होता है, जिसका लोगों को भुगतान करना पड़ता है। निर्धारित स्थलों में आने-जाने में समय लगता है, रास्ते के सुरम्य दृश्य देखने को मिलते हैं, अलग-अलग तरह की संस्कृतियाँ देखने को मिलती हैं, विभिन्न क्षेत्रों में भाषाएँ बदल जाती हैं, इस तरह से कुछ समय के लिए व्यक्ति का परिवेश बदल जाता है। यह बदला हुआ परिवेश व वातावरण ही उसके जीवन में नई सोच का निर्माण करते हैं व उसकी मनोदशा को बेहतर बनाते हैं।

आज पर्यटन विभिन्न देशों की अर्थव्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत बन गया है। एक शोध सर्वेक्षण के अनुसार, पर्यटन के माध्यम से करीब चार करोड़ लोगों को रोजगार मिला हुआ है। अकेले भारत देश में ही दस से बारह प्रतिशत की औसतन वृद्धि पर्यटन के क्षेत्र में प्रतिवर्ष हो रही है। पर्यटन एक शैक्षिक पाठ्यक्रम का विषय भी बन गया है। इसके माध्यम से तेजी से पर्यटन की दुनिया विकसित हो रही है, पर्यटन के उन विभिन्न क्षेत्रों का भी विकास किया जा रहा है, जो अभी तक उपेक्षित थे या किन्हीं कारणों से दृष्टि में नहीं आए थे। इसके साथ ही पर्यटन के उन नए क्षेत्रों का भी विकास किया जा रहा है, जो आजकल की रचनात्मक सोच का हिस्सा हैं।

आज की दुनिया में जहाँ साधन-सुविधाओं की भरमार है, स्मार्ट फोन के माध्यम से दुनिया के किसी भी कोने में पहुँचने का रास्ता एक क्लिक पर है, लोगों में दूरियाँ कम हो गई हैं, लोग चाहे दुनिया के किसी भी कोने में हों, वीडियो कॉल के माध्यम से उन्हें देखा जा सकता है, उनसे संवाद संभव है, उनकी खोज-खबर ली जा सकती है। हर स्थल पर स्वास्थ्य संबंधी सुविधाएँ, चिकित्सालय आदि हैं, अर्थ-व्यय करने के विभिन्न साधन हैं, कैश को सँभालने की चिंता भी पहले जैसी नहीं रह गई है। ऐसी साधनपूर्ण जिंदगी में जब व्यक्ति एक ही तरह का जीवन जीते-जीते बोरियत महसूस करता है, तो कुछ समय के लिए अपने जीवन में नवीनता चाहता है, कुछ बदलाव चाहता है। कुछ नए अनुभव लेने की चाहत, नए नजारे व दृश्य उसे अपनी ओर खींचते हैं और फिर यहाँ से शुरू हो जाती है—पर्यटन की यात्रा।

पर्यटन से व्यक्ति को बहुत सारे लाभ भी होते हैं। उसकी दिनचर्या में बदलाव आता है। पर्यटन के दौरान उसे हर दिन नई तरह की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, इससे उसके अंदर सक्रियता, सजगता बढ़ती है। प्रकृति के कोलाहल से दूर सुरम्य, शांत वातावरण में कुछ समय के लिए वह रह पाता है, विभिन्न सुंदर व मनोहर दृश्य उसके मन पर अपनी अमिट छाप छोड़ते हैं, व्यक्ति भी उन्हें अपने फोन पर या कैमरे में फोटो के माध्यम से सहेज लेता है। उसके खान-पान में भी काफी बदलाव आता है; क्योंकि हर क्षेत्र का भोजन व स्वाद अलग होता है।

आज की भागमभाग और ढर्रे वाली जिंदगी में पर्यटन, लोगों की जिंदगी का एक अनिवार्य हिस्सा-सा बनता जा रहा है। पहले के समय में लोग तीर्थयात्राएँ करते थे। इसके लिए वे लंबे समय से पैसा जोड़ते थे, फिर उन पैसों का व्यय तीर्थयात्रा के दौरान करते थे, दान करते थे, तीर्थयात्रा के प्रतीक चिह्न के रूप में सामान व प्रसाद खरीदते थे। पहले तीर्थयात्रा प्रायः व्यक्ति जीवन के अंतिम पड़ाव में करते थे, लेकिन आज के दौर में हर उम्र के लोग तीर्थयात्रा और पर्यटन करते हैं। एक प्रकार से देखा जाए तो आजकल तीर्थयात्रा भी एक तरह का पर्यटन हो गई है।

तीर्थयात्रा यानी आध्यात्मिक ऊर्जा से संपन्न क्षेत्रों की यात्रा, प्रमुख मंदिरों, जलाशयों, कुंडों, पवित्र नदियों, पवित्र पर्वतों आदि का दर्शन, पूजन, परिक्रमा, भ्रमण इत्यादि। दूसरी तरफ पर्यटन यानी प्रकृति के महत्त्वपूर्ण सुरम्य व सुंदर क्षेत्रों में भ्रमण, मानवनिर्मित ऐतिहासिक

भवनों व क्षेत्रों का अवलोकन, प्रसिद्ध स्थलों का दर्शन व भ्रमण आदि सब इसमें सम्मिलित हैं।

पर्यटन के दौरान लोग तीर्थयात्रा भी करते हैं और सामान्य यात्रा भी करते हैं, उनकी यात्रा का उद्देश्य तीर्थयात्रा का लाभ लेना नहीं, अपितु भ्रमण का आनंद लेना होता है। इसलिए पर्यटन के दौरान व्यक्ति अपनी यात्रा को यादगार, मनोरंजक व सुखद बनाने का पूरा प्रयास करता है, ताकि वह पर्यटन के पलों को अधिक-से-अधिक अपने मन में सँजो सके, फोटो व वीडियो क्लिप के माध्यम से इन्हें बार-बार देख सके। पर्यटन की यात्रा और भी दिलचस्प हो जाती है, जब व्यक्ति खरीदारी करने के लिए बाजारों में घूमता है और अपने लिए व अपनों के लिए पसंद की चीजें व जरूरत का सामान खरीदता है।

पर्यटन आज आधुनिक जीवनशैली का एक अंग बन चुका है। पर्यटन हेतु घूमने-फिरने जाना अब किसी व्यक्ति विशेष की सीमा के दायरे में नहीं, बल्कि हरेक व्यक्ति की सीमा में आ गया है। अब सामान्य व्यक्ति भी पर्यटन का भरपूर आनंद ले सकता है, अपनी आर्थिक क्षमता के अनुसार इसका लाभ उठा सकता है। पर्यटन से संबंधित कई शोध-अध्ययन भी हुए हैं, जो यह दरसाते हैं कि पर्यटन या तीर्थयात्रा करने से व्यक्ति के शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य में वृद्धि होती है; क्योंकि भ्रमण या सैर की यात्रा के दौरान व्यक्ति अधिक सक्रिय व सजग होता है। उसके जीवन की नीरसता इन यात्राओं में टूट जाती है और जीवन की विभिन्नताएँ उसे देखने को मिलती हैं। यात्रा की सुखद यादों से काफी दिनों तक व्यक्ति की मनोदशा अच्छी रहती है।

अवसाद व तनाव में कमी लाने में भी इन यात्राओं की काफी प्रभावी भूमिका होती है। अमेरिका स्थित पिट्सबर्ग विश्वविद्यालय के माइंड एवं बॉडी सेंटर के एक अध्ययन में यह बात निष्कर्ष रूप में सामने आई है कि छुट्टी लेकर कहीं घूमने जाने से व्यक्ति में सकारात्मक भावना का विकास होता है। कई शोध-अध्ययनों में यह भी पाया गया है कि नौकरी करने वाला व्यक्ति यदि छुट्टी लेकर घूमने जाता है तो वापस आने पर उसके अंदर का तनाव बहुत कम रह जाता है और उसकी कार्यशैली में भी सकारात्मक बदलाव आता है।

ब्रेन हेल्थ सेंटर के एक अध्ययन से यह खुलासा हुआ है कि यात्रा करने से व्यक्ति को अपने दिमाग को चुस्त-दुरुस्त रखने में मदद मिलती है और उसका शारीरिक स्वास्थ्य भी बढ़ता है। अध्ययनों से यह भी देखा गया है कि दिन भर ऑफिस में बैठे रहने वालों के मुकाबले यात्रा करने वाले ज्यादा सक्रिय होते हैं। अक्सर पर्यटनस्थल देखने के लिए व्यक्ति दिन भर में कई किलोमीटर पैदल चल लेते हैं। इसी तरह हिल स्टेशन पर जाकर लोग ट्रेकिंग या हाइकिंग भी करते हैं। पर्यटन के दौरान यात्रा करने से लोग काफी थक जाते हैं, जिससे रात को उन्हें गहरी नींद आती है, इस तरह जिन्हें नींद संबंधी शिकायतें हैं, वे दूर होती हैं। इस तरह पर्यटन में सैर करना स्वस्थ जीवनशैली के लिए बेहतर सिद्ध होता है।

पर्यटन से जहाँ बहुत सारे लाभ हैं, वहीं सावधानियाँ न बरतने पर नुकसान भी हो सकते हैं, जैसे—सामान का चोरी हो जाना, जेब कटने से आर्थिक नुकसान होना, खान-पान का ध्यान न रखने से बीमार पड़ जाना, अधिक सैर कर लेने से पैरों में दरद हो जाना, दुर्घटना का शिकार होना आदि। लाभ के साथ तो हानि हर जगह है, व्यक्ति चाहे कहीं पर भी रहे, सावधानी न बरतने पर दुर्घटना घट जाती है। इसलिए सावधानी बरतते हुए व अपने स्वास्थ्य को सहेजते हुए ही पर्यटन का लाभ लेना चाहिए। ❑

महत्त्वाकांक्षाएँ तभी श्रेयस्कर हो सकती हैं, जब उनके साथ पुण्य-परमार्थ की भावना को सँजोए रखा जा सके। महानता के मार्ग पर हर कोई चल सकता है और सच्चे अर्थों में विभूतिवान-सौभाग्यवान बन सकता है। इसे मूर्खता ही कहना चाहिए कि लोग बड़प्पन की मृगतृष्णा में भटकें और महानता की, उत्कृष्टता की उपेक्षा करें।

—परमपूज्य गुरुदेव

▶युवाक्रांति वर्ष◀

पाप-पुण्य से रहित होते हैं योगियों के कर्म

अंतर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग, योगसाधक की जीवनशैली का परिचय देते हैं। इसे परिभाषित और प्रकाशित करते हैं। योगसाधक की जीवनशैली का संबंध व्यावहारिक व बाहरी जीवन की अपेक्षा उसके आंतरिक जीवन एवं अंतश्चेतना से कहीं अधिक होता है। वह अपने सामान्य जीवन में सामान्य कर्मों को करता हुआ भी अपने आंतरिक जीवन एवं अंतश्चेतना को उत्तरोत्तर निर्भार करता है, इन्हें प्रकाशित करता है। उसके जीवन की विशेषताएँ उसके कर्मों के स्वरूप में नहीं, उसकी भावनाओं, विचारों, वृत्तियों व उसके दृष्टिकोण में होती हैं। वह महत्त्वाकांक्षाओं के साथ नहीं, महानता की आकांक्षा के साथ जीता है। उसकी जीवनशैली के परिणाम उसके जीवन में वैभव के रूप में न प्रकट होकर विभूतियों के रूप में प्रकट होते हैं। संसार में रहकर सांसारिक जीवनयापन करते हुए भी उसके भाव, विचार व वृत्तियाँ ब्राह्मीचेतना के साथ तदाकार होती हैं।

इस योगकथा की पिछली कड़ी में इसी भाव को अभिव्यक्ति दी गई थी। इसमें कहा गया था कि योगी का चित्त, ध्यान की प्रक्रिया से अनाशय होता है। परिष्कृत चित्त अथवा यों कहें कि चित्त की शुद्धतम अवस्था— योग, योगी व उसकी साधना के सम्यक स्वरूप का परिचय कराती है। यहाँ तक कि जब वह निर्माण चित्त की प्रक्रिया द्वारा अनेक चित्तों एवं इनके द्वारा स्थूल व सूक्ष्म में अनेक जीवनों का सृजन करता है, तब भी उसके प्रत्येक जीवन में यह सत्य यथावत् रहता है। उसके भिन्न-भिन्न उद्देश्यों के अनुरूप उसके द्वारा विनिर्मित प्रत्येक चित्त व उससे संलग्न उसके जीवन की संरचना तो अलग-अलग रहती है, परंतु उसके आंतरिक जीवन व आंतरिक चेतना की स्थिति में बदलाव नहीं आता है। ध्यानजनित उसका शुद्धतम चित्त जो उसका मूल स्वरूप होता है, उसके द्वारा अनेक प्रकार के चित्त नियंत्रित व सुनियोजित किए जाते रहते हैं। किसी भी जीवन में भटकन की संभावना को निरस्त किया जाता रहता है।

यह विशिष्टता योगी के कर्म में निहित होती है। इसे महर्षि अपने अगले सूत्र में प्रकट करते हैं—

कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्॥ ४/७॥

शब्दार्थ—योगिनः = योगी के; **कर्म** = कर्म; **अशुक्लाकृष्णम्** = अशुक्ल और अकृष्ण होते हैं (तथा); **इतरेषाम्** = दूसरों के; **त्रिविधम्** = तीन प्रकार के होते हैं।

भावार्थ—योगीजनों के कर्म अशुक्ल-अकृष्ण अर्थात पुण्य व पाप से रहित होते हैं। जबकि साधारण मनुष्यों के कर्म तीन प्रकार के—(१) शुक्लकर्म अर्थात पुण्यकर्म, (२) कृष्णकर्म अर्थात पापकर्म एवं (३) शुक्ल-कृष्णकर्म अर्थात पुण्य व पाप मिश्रितकर्म होते हैं।

इस सूत्र में योगऋषि पतंजलि ने कर्मों के स्वरूप को स्पष्ट किया है। इसमें बताया गया है कि सामान्य क्रम में कर्म तीन तरह के होते हैं। इनमें से पहला प्रकार है—(१) शुक्लकर्म अर्थात पुण्यकर्म। इन कर्मों का फल, जीव को अपने जीवन में सुख भोग के रूप में प्राप्त होता है। इसके बाद दूसरे प्रकार के कर्म हैं—(२) कृष्णकर्म अर्थात पापकर्म। इन कर्मों का फल, जीव को अपने जीवन में दुःख भोग के रूप में मिलता है। तीसरे प्रकार के कर्म हैं—(३) शुक्ल-कृष्णकर्म—ये ऐसे कर्म हैं, जिनमें पुण्य और पाप मिला हुआ होता है। इनके फल के रूप में उसे सुख और दुःख, मिश्रित रूप में प्राप्त होते हैं।

इन तीन प्रकार के कर्मों से योगीजनों के कर्म सर्वथा भिन्न होते हैं। इनका स्वरूप अशुक्ल व अकृष्ण होता है। इन कर्मों का कोई भोग नहीं होता; क्योंकि उनका चित्त संस्कारशून्य व वासनाशून्य होता है। इसलिए योगीजन निष्काम, अनासक्त व निर्लेप भाव से जीते हैं। कर्म करते हुए भी वे सर्वथा संतुष्ट, संतृप्त व पूर्णकाम होते हैं। योगीजनों के जीवन के इस स्वरूप को व्यक्त करने वाली योगवासिष्ठ की एक कथा है। योगवासिष्ठ में इसे आकाशज की कथा के रूप में कहा गया है। इस कथा को महर्षि वसिष्ठ ने मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम को सुनाया था।

इस कथा में कहा गया है कि आकाशज नाम का एक ब्राह्मण था। उसकी उत्पत्ति शुद्ध चिदाकाश से बिना किसी पूर्वकर्म लिए, लीलामात्र से हुई थी। उत्पन्न होकर वह सदा ही अपने चिदाकाश स्वरूप में स्थित रहता था। किसी विषय के लिए उसके हृदय में वासना नहीं थी और न ही वह किसी कामना से प्रेरित होकर कोई कर्म करता था। इस प्रकार का जीवन बिताते हुए उसको बहुत समय व्यतीत हो गया था। न तो उसने सुख भोग प्राप्त किए थे और न ही उसे दु:ख की अनुभूति हुई थी। यहाँ तक कि उसकी मृत्यु भी नहीं हुई।

जब बहुत समय बीत गया तो मृत्यु को ध्यान आया कि यह ब्राह्मण बहुत समय से जीवित है; अभी तक मरा नहीं, इसको अब मारना चाहिए। मृत्यु ने उसको मारने का बारंबार प्रयत्न किया, किंतु वह असफल रही। अपने को अपने नित्य के धर्म का पालन करने में इतना असमर्थ पाकर मृत्यु को आश्चर्य, खेद और क्रोध हुआ। जब अपनी असफलता का कारण मृत्यु की समझ में न आया, तो वह अपने स्वामी यमराज के पास पहुँची और उनके प्रति अपने विस्मय और अपनी असफलता का हाल कहा।

उसको सुनकर यमराज बोले—"हे मृत्यु! तू केवल निमित्त मात्र है, तू किसी को भी नहीं मार सकती, केवल प्राणियों के कर्म ही उनको मारते हैं। जिसने वासनात्मक कार्य किए हैं, वही तुम्हारा ग्रास बनता है। यदि तुम्हें आकाशज ब्राह्मण को मारना है तो जाकर उसके कर्मों का सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म निरीक्षण करो। यदि तुमको उसका कोई भी कामनापूर्वक किया हुआ कर्म मिल गया तो ही तुम उसे मार पाने में समर्थ हो सकोगी, अन्यथा नहीं।"

यमराज की बात सुनकर मृत्यु सूक्ष्मरूप से आकाशज ब्राह्मण के साथ रहने लगी। अब उसका एक ही काम था—आकाशज के कर्मों का सूक्ष्म व अतिसूक्ष्म निरीक्षण करना। उसने आकाशज के वर्तमान जीवन का व पूर्व जीवन का भली भाँति निरीक्षण किया, किंतु उसे आकाशज ब्राह्मण के जीवन में एक भी वासनात्मक कर्म नहीं मिला। मृत्यु ने उसके भाव, विचार व वृत्तियों की पड़ताल की, किंतु वहाँ भी उसे सब प्रकार से निष्कामता व अनासक्ति मिली।

वह ब्राह्मण सदा-सर्वदा ब्राह्मीचेतना में उपस्थित रहता था। उसकी स्थिति सदा आत्मभाव में रहती थी। किसी विषय के प्रति उसकी कोई वासना नहीं थी। उसके चित्त में ऐसी कोई भी कामना नहीं थी, जिसकी सिद्धि के लिए वह कर्म करता हो। उसके सारे कर्म बस, स्वभावप्रेरित थे। वह संसार की किसी भी वस्तु और प्राणी को अपने से भिन्न और बाहर नहीं समझता था। उसको अपनी क्षणभंगुर देह और मन के साथ आत्मभाव का अभिमान नहीं होता था।

यह सब देखकर मृत्यु की समझ में आ गया कि आकाशज का जीवन क्यों उसकी पकड़ व पहुँच से बाहर है। सब कुछ देख व समझकर मृत्यु, यमराज के पास गई और उनसे बोली कि जो आप कहते थे, वही सही निकला। मैं हर किसी को नहीं मार सकती। मारने वाले तो प्राणियों के अपने कर्म हैं। इन कर्मों के कारण ही मनुष्य सुख का, दु:ख का एवं मृत्यु का अनुभव करता है। योगीजन अपने आत्मभाव से स्थित रहकर कर्म करते हैं। किसी भी अवस्था में उनकी यह स्थिति परिवर्तित नहीं होती। इसीलिए उनके लिए महर्षि ने अपने सूत्र में कहा है कि योगियों के कर्म अशुक्ल-अकृष्ण होते हैं। ❑

एक व्यक्ति ने कुत्ता और बिल्ली पाल रखे थे। बिल्ली दिन और रात म्याऊँ-म्याऊँ करती, इस कारण वह व्यक्ति आराम नहीं कर पाता। एक दिन उसने चिढ़कर बिल्ली की पिटाई कर डाली और बोला—"क्यों सारे दिन म्याऊँ-म्याऊँ करती रहती है?" कुत्ते ने यह देखा तो डर के मारे उसने कभी न बोलने का निश्चय कर लिया। उस रात चोर उसके घर में चोरी करने घुसे। कुत्ते ने सब देखते हुए कुछ नहीं कहा। अगले दिन उस व्यक्ति ने कुत्ते को पीटते हुए कहा—"तुझे इसलिए पाला था कि चोर आएँ तो भौंककर सूचित करे और तूने मौन साध लिया।" वास्तव में किन्हीं परिस्थितियों में मौन अच्छा है तो किन्हीं में बोलना। मनुष्य को यह निर्णय अपने विवेक के अनुसार करना चाहिए।

►युवाक्रांति वर्ष◄

बस्तों के बोझों में बचपन को न दबने दें

विद्यालयों में विद्यार्थियों को दी जाने वाली शिक्षा ज्ञानवर्द्धक एवं प्रयोगधर्मी होना चाहिए। शिक्षा ऐसी हो, जिसे बच्चे प्रसन्नता के साथ खेलते-खेलते सीख सकें। मनोरंजक एवं ज्ञानवर्द्धक शिक्षा बच्चों को प्रेरित एवं प्रभावित करती है। इसके लिए बस्ते में भरी किताबों एवं कापियों के जखीरे की जरूरत नहीं पड़ती। प्रयोगधर्मिता से रहित शिक्षा आज के बच्चों को पुस्तकों का बोझ ढोने के लिए विवश करती है और इसी कारण बच्चों का बस्ता इतना भारी हो गया है कि बच्चे इस भार से दबने लगे हैं। दुर्भाग्यवश इस भार से बच्चों को हलका करने के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाए जा रहे हैं, जो चिंता का विषय है।

वर्तमान शिक्षापद्धति बच्चों को किताबों से भरा भारी-भरकम बस्ता थमा देती है। वर्तमान शिक्षाविद् अपने कर्त्तव्य का निर्वहन करते प्रतीत नहीं होते और स्कूल के पाठ्यक्रम इतने बोझिल एवं बड़े हो गए हैं कि बच्चों को ढेर सारी किताबों को लेकर विद्यालय जाना पड़ता है। स्कूली बच्चों के पास हर विषय के लिए अलग-अलग किताबें होती हैं। टेक्स्टबुक, वर्कबुक, नोटबुक आदि को मिलाकर हर दिन बच्चों को लगभग १८ से २० किताबें लेकर विद्यालय जाना पड़ता है। उनके स्कूल बैग का वजन धीरे-धीरे १० से १२ किलोग्राम तक पहुँच जाता है।

भारी स्कूली बस्तों के संदर्भ में मानव संसाधन विकास मंत्रालय के आँकड़े चौंकाने वाले हैं। इन आँकड़ों के अनुसार, हरियाणा राज्य के बच्चे सबसे वजनी स्कूली बस्ते ढोते हैं। उनके बस्ते अन्य राज्यों की अपेक्षा ज्यादा वजनी होते हैं। इसके बाद गुजरात, मध्यप्रदेश और राजस्थान का नाम आता है। यह स्थिति तो सरकारी स्कूलों की है, जिनमें अभी भी इतने भारी बस्ते नहीं हैं; जबकि देश के अधिकतर निजी विद्यालयों में तो बच्चों को १५ किलोग्राम या उससे भी अधिक वजन को ढोकर स्कूल जाना पड़ता है। बच्चों के बस्तों के इस बोझ को हलका करने की जरूरत है।

इसके समाधान हेतु कहीं-कहीं कुछ प्रयोग भी किए जा रहे हैं। हाल ही में महाराष्ट्र सरकार ने इस दिशा में एक पहल की थी। पूर्व राष्ट्रपति एपीजे अब्दुल कलाम की जयंती पर मुंबई और आस-पास के क्षेत्रों में बच्चों को बस्तों के बोझ से मुक्त करने के लिए एक अनूठी पहल की गई। महाराष्ट्र के शिक्षा मंत्रालय के निर्देश पर इस दिन को बचपन प्रेरणा दिवस के रूप में आयोजित किया गया। इस दिन तीसरी से आठवीं कक्षा के बच्चों की बस्ते लाने के लिए मना कर दिया गया। इसके स्थान पर बच्चों को कविता, कहानी इत्यादि के माध्यम से सामान्य ज्ञान उपलब्ध कराया गया। महाराष्ट्र सरकार की इस पहल से जो उत्साहवर्द्धन हुआ, आशातीत सफलता मिली, इससे केरल सरकार ने भी ऐसी पहल अपने यहाँ की।

समाजशास्त्री एवं शिक्षाविदों का मानना है कि बच्चों को किसी भी तरह से स्कूली बस्तों के भारी वजन से मुक्त किया जाए। भारी बस्तों के कारण बच्चों को अनेक शारीरिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कुछ को तो रीढ़ की हड्डी में विकार जैसी अनेक बीमारियाँ हो जाती हैं। यही वजह है कि विभिन्न शैक्षिक बोर्डों द्वारा इस विषय में कई बार दिशा-निर्देश जारी किए जा चुके हैं। सी.बी.एस.ई. और केंद्रीय विद्यालय संगठन बस्तों का वजन कम करने का सुझाव पहले ही दे चुके हैं। इसी तरह के सुझाव सेंट्रल एडवाइजरी बोर्ड ऑफ एजुकेशन (सीएबीई) ने भी दिए हैं।

इस संदर्भ में सीएबीई ने कहा था कि दूसरी कक्षा तक के बच्चों के बस्ते तो विद्यालय में ही रहने चाहिए। विद्यालय ऐसा टाइम टेबल बनाएँ, ताकि बच्चों को हर दिन ज्यादा किताबें लाने की जरूरत न हो। समाजशास्त्रियों ने चिकित्सकों की इस राय पर कई बार चिंता प्रकट की है कि भारी बस्तों से बच्चों का शारीरिक-मानसिक विकास थम जाता है। महाराष्ट्र की समाजसेविका स्वाति पाटिल ने मुंबई हाइकोर्ट में एक याचिका भी दायर की थी,

जिसमें ऐसे कदम उठाने की माँग थी कि बच्चों पर लदे बस्तों का बोझ कम हो जाए।

बस्तों का बोझ कम कैसे हो? इस संबंध में अभिजीत पनसे के अनुसार, स्कूली बच्चों की किताबों को एक शैक्षणिक वर्ष में चार यूनिटों में बाँट दिया जाना चाहिए। एक ही किताब में सारे विषयों के एक-चौथाई पाठ होने चाहिए। उदाहरण के लिए जून से अगस्त के बीच पढ़ाए जाने वाले सभी विषयों की एक पुस्तक हो और ऐसी ही पुस्तक दूसरी शैक्षणिक अवधि के लिए हो। इस प्रकार पूरे वर्ष का पाठ्यक्रम केवल चार पुस्तकों के माध्यम से पूरा किया जा सकता है। इससे बच्चों को पूरे वर्ष के पाठ्यक्रम को बस्तों में भर कर नहीं ले जाना पड़ेगा।

इसका लाभ अभिभावकों को भी होगा; क्योंकि उन्हें एक बार में एक ही अवधि की पुस्तक खरीदनी पड़ेगी। इससे अध्यापकों को भी सुविधा होगी कि वे केवल एक शैक्षणिक अवधि में एक ही पाठ्यक्रम पर ध्यान केंद्रित कर सकेंगे। ऐसे और भी अनेक प्रावधान हो सकते हैं, परंतु ये प्रावधान केवल प्रावधान ही न रह जाएँ, इन्हें क्रियान्वित करने की भी आवश्यकता है।

आज के विद्यार्थी ही कल राष्ट्र एवं विश्व का नेतृत्व करेंगे। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि हम उनके बस्तों के वजनों को न बढ़ाते हुए उनके कंधों को मजबूत करें, ताकि वे भविष्य में उन पर आने वाली जिम्मेदारियों का भरपूर तरीके से निर्वहन कर सकें। ऐसा करने के लिए ज्यादा पुस्तकों की नहीं, अपितु सम्यक ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है और यह ज्ञान उनका भावनात्मक नवनिर्माण करके व उनमें जीवन के प्रति सही सोच विकसित करके ही प्रदान किया जा सकता है। ❑

आवश्यक ज्ञातव्य

मुनस्यारी में विशिष्ट साधना सत्रों का द्वितीय चरण

मुनस्यारी (उत्तराखंड) में विनिर्मित साधना स्वावलंबन केंद्र में प्रथम चरण में सफलता पूर्वक संपन्न नौ साधना सत्रों के बाद श्रृंखला का द्वितीय चरण नवरात्र ५ अप्रैल, २०१७ से आरंभ होने जा रहा है। कुल २४ साधकों के लिए साधना हेतु स्थान एवं साधनों की व्यवस्था की गई है। सभी को अपने चिकित्सा प्रमाणपत्र के साथ सीधे शांतिकुंज आना है। यहाँ से जाँच-परीक्षण एवं आरंभिक संक्षिप्त उद्‌बोधन के बाद उन्हें हल्दूचौड़ शक्तिपीठ, जिला हल्द्वानी के लिए भेजा जाएगा। वहाँ से प्रातः ७ से पूर्व मुनस्यारी के लिए रवाना होकर सायंकाल तक मुनस्यारी पहुँच जाएँगे।

मुनस्यारी की शांतिकुंज से दूरी ५१० कि.मी. है। जो अपनी हरिद्वार तक की यात्रा के बाद इतनी लंबी यात्रा कर सकें वे ही जा पाएँगे। इस हेतु पिछले वर्ष ही कुछ साधकों के आवेदन प्राप्त हो चुके हैं। फिर भी जिन साधकों को इसमें सम्मिलित होना हो, वे आवेदन ऑनलाइन कर सकेंगे। नए शिविरों की तारीखें ६ अप्रैल, २०१७ से ५ जुलाई, २०१७ तक की हैं। कुल १८ सत्र अभी निर्धारित हैं। समस्त शिविरों की तारीखें एवं अनुशासन शांतिकुंज की वेबसाइट www.awgp.org पर उपलब्ध रहेंगे और उसी पर आवेदन भी भेजे जा सकेंगे। विस्तार से website देखें।

विष पर करुणा की विजय

तुम्हें ग्लानि से आरक्त होने की आवश्यकता नहीं है, चंड कौशिक। मनुष्य धरती पर आता है तो एक लक्ष्य लेकर के आता है, एक उद्देश्य लेकर के आता है— चाहे वो उसे पूरा करे या न करे, पर हर जीव के, हर प्राणी के जन्म लेने से पूर्व उसके जीवन का एक निर्धारित लक्ष्य और निश्चित उद्देश्य होता है। तुम्हारा जीवन भी सदुद्देश्यों की पूर्ति के लिए हुआ है। काल के प्रवाह में भ्रमित होकर, कर्मों के क्षय के लिए तुम भले ही कुछ ऐसे कर्मों को करने में निरत हो गए, जिन्हें करने की तुम्हारी अभीप्सा न थी, परंतु अनंत जीवन के विस्तार में आया एक क्षणिक अवरोध ज्यादा देर टिकेगा नहीं। मन को ग्लानि से मुक्त करो, नए जीवन की प्रतीक्षा करो और उसको पूर्वजन्मों की भाँति तपस्या में लगाओ। शुभकर्म की ऊर्जा तुम्हें उन कुसंस्कारों से मुक्त करेगी, जो तुम्हें इन निम्न योनियों में घसीट लाए हैं—इन शब्दों को कहते हुए भगवान महावीर के मुख पर करुणा के भाव थे।

महापुरुषों के जीवन में कोई भी घटनाक्रम संयोग से घटित नहीं होते। ईश्वरीय आदेश की पूर्ति हो अथवा दैवीय अनुरोधों का अनुमोदन करने का भाव—दिव्य आत्माएँ कोई भी कर्म, किसी दैवीय योजना की पूर्ति के लिए ही करती हैं। इस सत्य की अनुभूति भगवान महावीर के साथ चल रहे उनके निकटवर्ती शिष्य प्रचेता को, भगवान महावीर व चंड कौशिक महासर्प के मध्य हो रहे इस वार्तालाप से हो रही थी।

आज प्रातः भगवान महावीर प्रव्रज्या पर निकले थे। जिस मार्ग से उन्होंने जाने का निश्चय किया, उधर जाने से आगाह करते हुए उनके शिष्यों ने उनसे कहा— "भगवन्! कृपया उधर से न जाएँ। उस मार्ग में चंड कौशिक नामक महासर्प रहता है, जो अकारण ही आने-जाने वालों पर आक्रमण करता है। वह अनेकों को अपने दंश से मृत्यु के घाट उतार चुका है।" महावीर बोले— "वत्स! तुम्हारे प्रेम को मैं सहर्ष स्वीकारता हूँ, परंतु दैवीय योजना में हमारी कामनाओं का स्थान नहीं है। वे मुझे जिस मार्ग से ले जाना चाहते हैं, वही श्रेष्ठ है।"

प्रभु को अपना समर्पण, इन शब्दों के साथ व्यक्त करते हुए भगवान महावीर उसी मार्ग से निकले, जिस मार्ग पर चंड कौशिक के उन पर प्रहार की आशंका थी। जिनकी उपस्थिति मात्र से काल, अपने प्रवाह को भूलकर उनके चरणों में नतमस्तक हो जाए—ऐसे दिव्य तपस्वी, अवतारी सत्ता भगवान महावीर के लिए एक सर्पदंश से बचाव कोई बड़ी बात नहीं थी, परंतु महापुरुष जीवन स्वयं के लिए कहाँ जीते हैं ? उनका जीवन तो लोकोत्थान के लिए होता है व उनके हर कृत्य में कोई-न-कोई दैवीय प्रेरणा और दिव्य संदेश समाहित होता है। सारी आशंकाओं के बावजूद महावीर ने महासर्प चंड कौशिक के कोटर के सामने वाले पथ का ही चयन किया। चंड कौशिक भी जैसे उसी पथ पर उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। वर्षों से उस मार्ग से कोई गुजरा नहीं था। आज एक निर्भीक व्यक्तित्व को सम्मुख आते देख उसके अंदर का क्रोध जैसे उमड़ ही पड़ा।

चंड कौशिक को लगा कि यह कौन व्यक्ति है, जो इतना निडर होकर मेरे निवास के सामने से चलता चला जा रहा है। भगवान महावीर के शिष्य उनसे थोड़ा पीछे रह गए थे। चंड कौशिक ने भगवान महावीर के समीप आते ही उन पर पूर्ण उत्तेजना में आकर प्रहार कर दिया। उसकी दंतपंक्तियाँ, उसके भीतर के विष को तीव्रता के साथ भगवान महावीर के शरीर में डालने का प्रयत्न कर रही थीं।

चंड कौशिक को अंदेशा था कि इतना विष शरीर में जाने के उपरांत सामने खड़ा यह व्यक्ति क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकेगा, परंतु विधि को कुछ और ही स्वीकार था। चंड कौशिक ने एक नहीं, बीसियों बार भगवान पर अपने प्रहार किए और वे हर बार उसे यों ही मुस्कराते दिखाई पड़े। ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे उसका विष उनके शरीर में जाकर प्रभावहीन हो रहा हो। जब अनेकों बार दंश करने पर भी उसे अपने विष का कोई प्रभाव न होता दिखाई पड़ा तो उसने सोचा कि संभवतया उन्हें लपेटकर मार देना ही उचित होगा।

▶युवाक्रांति वर्ष◀

इस दुर्भावना के साथ उसने भगवान महावीर के पैरों में अपने शरीर को लपेटना आरंभ किया। एक नहीं, दो नहीं, बल्कि तीन बार उनके शरीर के चारों ओर लिपट जाने के बाद भी उसके वलय शक्तिविहीन ही प्रतीत हो रहे थे। इन क्षणों में उसने एक बार पलटकर भगवान महावीर की आँखों की ओर देखा। उसे महसूस हुआ कि अभी वहाँ महावीर नहीं खड़े थे, वरन साक्षात् परमेश्वर विराजमान थे। क्षण भर में ही उसकी पकड़ ढीली हो गई और वह भगवान के चरणों में आ गिरा। पलक झपकते ही विगत दो जन्म उसकी आँखों के सामने से गुजर गए।

चंड कौशिक को स्मृति हुई कि दो जन्म पूर्व वह एक प्रचंड तपस्वी के रूप में एक आश्रम का अधिपति था। उसकी तपस्या तो प्रचंड थी, परंतु उसका स्वयं के क्रोध पर नियंत्रण न था। एक दिन मार्ग में जाते हुए उसका पैर एक मेंढ़क के ऊपर पड़ गया, जिसने उस निरीह प्राणी के प्राण ही हर लिए। साथ चलते सहयोगी ने उसका ध्यान इस प्रवाद की ओर खींचा तो क्रोध में वह उसे मारने को दौड़ा। उसके मन में इस छोटी-सी घटना का उन्माद इतना अधिक था कि उस उन्माद में ही उसे हृदयाघात हुआ और वह जीवन वहीं समाप्त हो गया।

चंड कौशिक याद कर रहा था और उसे प्रभुप्रेरणा से विगत जन्म भी याद आ रहा था। विगत जन्म में उसको एक वणिक के यहाँ जन्म मिला। उससे पूर्वजन्म में कृत तपस्या का पुण्य तो एक उन्माद ने हर लिया था और वणिक के यहाँ मिले जन्म की संपदा दूसरे उन्माद ने हर ली। इस जन्म में उसका किसी कारण से व्यापारिक सहयोगी से मतभेद हुआ तो उसने उस पर भी प्रहार करने का प्रयत्न किया। बीच में एक गड्ढा था, जिसमें उसका पैर आया तो वह जीवन भी वहीं समाप्त हो गया।

मनुष्य का जीवन तो निमित्त मात्र है। यह शरीर प्राप्त करने का माध्यम तो मनुष्य के पूर्वकृत कर्म ही बनते हैं। अशुभकर्म, आत्मा को मनुष्येतर योनियों की ओर ले जाते हैं तो शुभकर्म, उसे उत्कर्ष के पथ पर चलाते हुए देवमानव तक बना देते हैं। किसी समय के प्रचंड तपस्वी चंड कौशिक को इसी कारण, दो जन्मों में अपनी तपस्या की पूँजी, गँवा देने के कारण एक सर्प की योनि में जन्म लेना पड़ा। पूर्वजन्मों की स्मृति आने के साथ ही चंड कौशिक के मन में ग्लानि के भाव भी जन्म ले रहे थे।

इसी ग्लानि भरे हृदय से उसने भगवान के चरणों में स्वयं को समर्पित कर दिया और अनुनय भरे शब्दों में बोला—"भगवन्! अनजाने में यह मुझसे क्या भूल हो गई? आप तो उस परमसत्ता के माध्यम हैं, जो प्रत्येक जीव को जीवन देते हैं और मैं, आप ही के जीवन को हरने का दुष्प्रयत्न कर बैठा। जन्म-जन्मांतरों की तपस्या को भुलाकर यह आज मैं क्या कर रहा हूँ?" चंड कौशिक के शब्दों में पीड़ा थी और अंतस् में पश्चात्ताप के सघन भाव। उसका हृदय अपनी इस वेदना को भगवान के सम्मुख व्यक्त करते हुए गहन रूप से विगलित हो रहा था।

भगवान महावीर बोले—"पुत्र! व्यथित न हो। प्राणी का जीवन भूलों से परिभाषित नहीं होता, उनसे शिक्षा लेकर जीवन का परिष्कार करने से होता है। यहाँ कण-कण में भगवान स्वयं विद्यमान हैं। उन्हें साक्षी मानकर जब जीव निष्काम भाव से कर्म को करता है तो वे स्वतः ही आत्मा की उन्नति के मार्गों को खोल देते हैं। यों समझ लो कि भागता हुआ भगवान, संसार है और ठहर गया संसार, भगवान है। अपने मन को स्थिर कर लो, इंद्रियों से ऊपर उठकर, अपने क्रोध को जीतकर भक्ति को प्रगाढ़ करो—मार्ग स्वयं मिलेगा।"

चंड कौशिक ने अपनी जिज्ञासा व्यक्त की—"प्रभु! क्या मुझ जैसे पापी की मुक्ति संभव है?" भगवान महावीर बोले—"पुत्र! पाप और पुण्य—मनोदशा के ही नाम हैं। जिस क्षण तुम्हारा जीवन के प्रति दृष्टिकोण सकारात्मक होता है, उसी क्षण तुम पाप से पुण्य में प्रवेश कर जाते हो। तुम्हारे भीतर एक गहन तपस्वी की आत्मा है। यह जीवन तुम्हें, पूर्वकृत भूलों को याद दिलाने के लिए ही मिला है। जो गुजर गया, उसे भूल जाओ। जो आने वाला है, उसके लिए तैयारी करो।"

यह कहते हुए भगवान महावीर ने चंड कौशिक को दीक्षा प्रदान की। साधक तो वह पहले से ही था, उस दीक्षा का उद्देश्य तो मात्र उसे इंद्रियविजय करते हुए पुनः तपस्या के पथ की ओर प्रेरित करना था। उसने अगला जन्म एक तपस्वी का लेकर जीवनमुक्त अवस्था को प्राप्त किया। इस घटना के साक्षी बने भगवान महावीर के शिष्य प्रचेता के लिए भी यह घटना इस सत्य का परिचायक थी कि किसी महापापी का भी उद्धार करने के लिए भगवान के सहचर, किस तरह स्वयं को आपदाओं के सम्मुख प्रस्तुत करने से भी नहीं चूकते हैं। ❑

यौवन की ऊर्जा पर यह ग्रहण न लगने दें

यौवन—शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक दृढ़ता एवं भावनात्मक ऊर्जा के लिए जाना जाता है और यह ऊर्जा स्वास्थ्य की दृढ़ता का परिचायक भी होती है। यदि युवा इस ऊर्जा को उचित दिशा में प्रयुक्त करे तो, उसका जीवन सार्थक हो जाता है, अन्यथा भटकाव की ओर कदम कब बढ़ जाएँ पता ही नहीं चलता है। युवा जीवन १५ वर्ष की आयु से ३५ वर्ष की आयु तक माना जाता है। पैंतीस वर्ष की आयु पूरी होते ही यौवन ढलने लगता है और प्रौढ़ता, परिपक्वता की श्वेत छाया जीवन को छूने लगती है। लगभग बीस वर्षों का यह आयु-काल यौवन का है, परंतु खेद की बात यह है कि आज का युवा असमय ही अपने यौवन को खोता जा रहा है।

यौवन आरंभ होते ही शारीरिक परिवर्तन के लक्षण शुरू होने लगते हैं। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि यौवन के पदार्पण के साथ ही शारीरिक परिवर्तन की भाँति मानसिक परिवर्तन भी कई तरह के होते हैं। उनका यह समय भावनात्मक एवं वैचारिक संक्रांति का है। इस अवधि में कई तरह के भाव एवं विचार उफनते हैं। अनेकों उद्वेग एवं आवेग उमड़ते हैं। कई तरह के अंतर्विरोधों का सिलसिला अंतस् में चलता रहता है। शक्ति के प्रचंड ज्वार उभरने एवं विलीन होने लगते हैं। यह सब इतनी तीव्र गति से होता है कि स्थिरता खोती नजर आती है। इसीलिए यदि युवाओं को समय रहते सही दिशा मिल जाए तो वे स्वयं का एवं अन्य का कल्याण कर पाने में समर्थ हो सकते हैं।

आज भारत को विश्व में सबसे युवा आबादी वाला देश माना जाता है। भारत की किशोर आबादी लगभग २५ करोड़ ३० लाख है। लेकिन आँकड़े कहते हैं कि १५ से १९ आयु वर्ग के किशोरों में ५६ प्रतिशत किशोरियाँ एवं ३० प्रतिशत किशोर लड़के एनीमिया के शिकार हैं। एनीमिया का तात्पर्य है अल्परक्तता यानी कि हीमोग्लोबिन की कमी, जिससे आज अपना युवा वर्ग दुष्प्रभावित है। भारत की हर दूसरी युवती और हर तीसरा युवक खून की इस कमी से जूझ रहा है।

ऐसा माना जाता है कि युवाओं की शिराओं एवं धमनियों में खून का उबाल उछाल मारता रहता है, परंतु आज युवाओं का खून ही सूखता प्रतीत हो रहा है। यह आँकड़े हमें आईना दिखाते हैं और चिंताजनक पहलुओं की ओर हमारा ध्यान खींचते हैं; क्योंकि यह स्थिति अपने युवा देश के लिए किसी भी रूप में सही नहीं कही जा सकती है।

१० से १९ वर्ष के आयु वर्ग में एनीमिया का खतरा बहुत ज्यादा होता है। एनीमिया मुख्यतः आयरन की कमी से होता है। एनीमिया लड़कियों के शारीरिक विकास को क्षीण कर देता है। इससे शरीर में थकान होने लगती है। थोड़ा-सा काम करते ही शरीर थक जाता है और काम बीच में ही छूट जाता है; क्योंकि काम के लिए जिस ऊर्जा की जरूरत पड़ती है, वह चुकने लगती है। ऊर्जा की कमी के कारण मानसिक क्षमता भी प्रभावित होने लगती है। एनीमिया मानसिक क्षमता को भी कमजोर करता है और इसके कारण चिंता, उदासी, नकारात्मकता, कुंठा, कार्य के प्रति अरुचि, याद न आना, विषय के प्रति समझ में कमी एवं लंबे समय तक कार्य करने की क्षमता का अभाव, जैसे लक्षण उभरने लगते हैं।

इस सबके साथ एक तथ्य यह भी है कि भारत में विवाह होने की उम्र विश्व के अन्य देशों की तुलना में कम है। नवविवाहित युवतियों में एनीमिया होने के कारण उनके एवं उनके बच्चे के स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव पड़ता है। इसमें गर्भस्राव की आशंका, मृत बच्चे का जन्म, वक्त से पूर्व बच्चे का जन्म एवं कम वजन वाले बच्चे के पैदा होने की संभावना सदा बनी रहती है। इस संदर्भ में हुए एक शोध के आँकड़ों के अनुसार, प्रसवकाल के दौरान महिलाओं की होने वाली मृत्युओं में से ३५ से ४० प्रतिशत महिलाओं की मृत्यु का कारण पोस्ट पार्टम हैमरेज (पीपीएच) यानी तेज गति से रक्तस्राव का होना बताया जाता है। चिकित्सकों का कहना है कि एनीमिया के कारण भी इस तरह के रक्तस्राव का खतरा अधिक बढ़ जाता है।

▶युवाक्रांति वर्ष◀

यह चिंता का विषय है कि जिस युवावस्था को स्वास्थ्य की दृष्टि से श्रेष्ठ उम्र माना जाता है, उसी युवावस्था में इतनी ज्यादा स्वास्थ्य की समस्याएँ देखने को मिलती हैं। प्रतिवर्ष १० से २४ आयु वर्ग के युवक-युवतियों की मृत्यु के पीछे एनीमिया एक प्रमुख कारण बनकर उभरा है। युवाओं की इस मृत्यु दर को अवश्य ही घटाया जा सकता है। नेशनल फेमिली हेल्थ सर्वेक्षण (२००५-०६) से पता चलता है कि १५ से १९ आयु वर्ग के २६ से ३० प्रतिशत युवा एनीमिया से पीड़ित हैं।

अपने देश में यदि युवा जनसंख्या के स्वास्थ्य का उचित ध्यान रखा जाए तो ये सभी देश के विकास में अमूल्य योगदान प्रदान कर सकते हैं। इससे जीवन की गुणवत्ता पर असर पड़ सकता है व देश एवं दुनिया की आर्थिक क्षमता में भी वृद्धि हो सकती है; क्योंकि एक स्वस्थ व्यक्ति अधिक शारीरिक एवं मानसिक श्रम कर सकता है। चिंतित होने वाली बात यह है कि अपने देश में पिछले ४५ वर्षों से एनीमिया को नियंत्रित करने के लिए अनेक कार्यक्रम चल रहे हैं, परंतु इसके बावजूद स्थिति दयनीय बनी हुई है।

इस क्रम में समग्र किशोर स्वास्थ्य कार्यक्रम १०-१४ एवं १५-१९ आयु वर्ग पर केंद्रित है। वीकली आयरन एंड फॉलिक एसिड सप्लीमेंट (WIFS) इस कार्यक्रम का महत्त्वपूर्ण अंग है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भी इस संदर्भ में तीन रणनीतियाँ अपनाने का सुझाव दिया है, जिनमें महत्त्वपूर्ण है—आयरन एवं फॉलिक एसिड का नियमित उपयोग। भारत सरकार ने भी देश की युवा जनसंख्या में एनीमिया को कम करने के लिए राष्ट्रीय WIFS कार्यक्रम प्रारंभ किया है। जिसका लक्ष्य है—११ करोड़, २० लाख किशोर लड़कों एवं लड़कियों तक पहुँचना। इसके तहत हर प्रभावित युवक एवं युवती तक प्रति सप्ताह पहुँचकर उसे यह सप्लीमेंट देने की व्यवस्था की जाती है। इस तरह एक वर्ष में ५२ सप्ताह बाँटने की व्यवस्था को अंजाम दिया जाता है।

वर्ष २०१२ में प्रारंभ हुई इस योजना के तहत एनीमिया दूर करने के लिए ६-१२वीं कक्षा में पढ़ने वाले ४ करोड़, ४० लाख विद्यार्थियों और १०-१९ आयु वर्ग की २ करोड़, ८० लाख लड़कियों को सेवाएँ प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया था, परंतु २०१५ तक लक्षित ७ करोड़, २० लाख में से केवल ३ करोड़, ८० लाख तक ही यह कार्यक्रम पहुँच पाया है। इसे अपने निर्दिष्ट लक्ष्य तक पहुँचाना आवश्यक है।

आधुनिक विज्ञान के इस दौर में शरीर को स्वस्थ रखने व जीवनीशक्ति को बढ़ाने संबंधी प्रयोगों में तेजी आई है, चिकित्सक भी बढ़ रहे हैं, किंतु हमारे युवक-युवतियों की ऊर्जा को एनीमिया (अल्परक्तता) ने छीन लिया है, जिसके कारण हमारी युवा पीढ़ी अशक्त, रुग्ण नजर आ रही है। इसकी संपूर्ण उपचार-प्रक्रिया की सफलता पर भी संदेह के बादल मँडराने लगे हैं। अतः इसे योजनाबद्ध रीति-नीति से दूर करने की आवश्यकता है और इस हेतु समवेत प्रयास जरूरी हैं। ☐

टिहरी गढ़वाल के सकलाना पट्टी के विश्वेश्वर दत्त सकलानी ने वृक्षों की रक्षा तथा नए पौधों के आरोपण का कार्य अपने हाथ में लिया हुआ था। वे जगह-जगह जाते और पौधों को रोपते। ग्रामीणों को बताते कि हरे-भरे वृक्षों को काटना कितना घातक हो सकता है। एक दिन एक गाँव में चारे की खोज में आई महिलाओं ने छोटे-छोटे पौधों को काट लिया। सकलानी जी वहाँ पहुँचे और उनसे बोले—"बहनो! भगवान ने हरे पौधों एवं पेड़ों को बेटों के समान बनाया है। एक हरा पेड़ या पौधा काटना, किसी व्यक्ति की हत्या के पाप के समान है।" उन महिलाओं ने उसी समय संकल्प लिया कि वे कभी हरे पौधे या पेड़ नहीं काटेंगी। इसी के साथ वे महिलाएँ भी सकलानी जी के साथ वृक्षारोपण अभियान का अंग बन गईं। कुछ ही दिन बाद वहाँ सबके सम्मिलित प्रयास से एक हरा-भरा वन बन गया।

अतिदिव्य एवं अतिपावन है प्रभु का स्पर्श

आदिशक्ति की लीलाकथा जीवन में ईश्वरीयता के संपर्क व संस्पर्श का मार्ग प्रशस्त करती है। जीव कहीं भी हो, उसका जीवन किसी भी अवस्था में क्यों न हो, पर वह सदा-सर्वदा ईश्वर का सनातन अंश होता है। उसकी यह स्थिति अपरिवर्तनीय है, शाश्वत है। परिवर्तन जीवन की बाहरी अवस्थाओं में होते हैं, गुणों में न्यूनाधिकता होती है, संस्कार व कर्मों के रूप बदलते हैं, चित्त की अवस्था बदलती है—लेकिन जो चित्त के पार है, परे है, वह यथावत् रहता है। उसके संकल्प से बाहरी स्थितियाँ बदल सकती हैं, पर बाहरी स्थितियों के बदलाव से उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। इसीलिए सभी जीव महामाया की स्वाभाविक संतानें हैं। सभी पर उनकी करुणापूर्ण दृष्टि रहती है। सभी के उद्धार का दायित्व भी उन्हीं पर है। वे प्रयत्नपूर्वक इसे निभाती हैं।

आदिशक्ति की लीलाकथा की पिछली कड़ी में इसका संकेत दिया गया था। इसमें कहा गया था कि महामाया द्वारा सम्मोहित किए जाने पर मधु-कैटभ ने भगवान श्रीहरि से कहा—"हम दोनों तुमसे, तुम्हारी वीरता से संतुष्ट हैं, इसलिए तुम हमसे वर माँगो।" बात अटपटी है, भला जीव, ईश्वर को किस तरह वरदान दे सकता है। परंतु यदि अपना दृष्टिकोण सम्यक करें, तो स्पष्ट होगा कि अहंकार व अज्ञान में लिपटी जीव की चेतना ऐसे अटपटे कार्य कर सकती है। इसमें एक तत्त्व यह भी है कि महामाया ने करुणावश मधु-कैटभ की तामसिकता को भगवान श्रीनारायण के सम्मुख कर दिया। परात्पर चेतना के सम्मुख होने पर भला तमोगुण कब तक और कहाँ तक टिकेगा? अहंकार व अहंकारजनित अज्ञान है तो आखिर तमोगुण ही। ईश्वर के सम्मुख होने पर इन्हें तो मिटना ही है। उनकी स्वाभाविकता को तो उबरना व उभरना ही है और यह सब संभव हो रहा जगन्माता की लीला से।

इस कथा-प्रसंग में आगे है श्रीभगवान का कथन—

श्रीभगवानुवाच॥ १/१/९६॥

अर्थ—श्रीभगवान ने कहा।

आदिशक्ति की लीलाकथा के प्रसंग में अब तक उवाच के कई प्रकरण आए हैं। इन सभी उवाचों के द्वारा कथा की कड़ियाँ, कथा के प्रसंग परस्पर जुड़े हैं, कथा ने एक नए आयाम में प्रवेश किया है। उवाच के इस क्रम में अब तक—(१) मार्कण्डेय उवाच, (२) वैश्य उवाच, (३) राजोवाच, एवं (४) ऋषि उवाच के क्रम कई बार आए हैं। इस बार श्रीभगवानुवाच आया है। यह पहली बार है, जब श्रीभगवान कुछ कह रहे हैं। श्रीभगवान का कथन इस कथा में, इस प्रथम चरित और प्रथम अध्याय में पहली बार है। यह प्रसंग विरल है।

इसे आध्यात्मिक अर्थों में, दार्शनिक व तात्त्विक अर्थों में देखें, तो जीव के जीवन में भी यह विरल ही होता है। सामान्य क्रम में जीव की जीवन चेतना, अहंकेंद्रित होती है। इस अहंता का अज्ञान उसे आवृत किए रहता है। वह सर्वदा आत्मविमुख रहता है, नहीं समझ पाता है स्वयं को एवं अपने जीवन के उद्देश्य को। प्रकृति के तीनों गुण—सत, रज एवं तम उसे अपने प्रभाव में लिए रहते हैं, माया उसे भ्रमित किए रहती है और भ्रमण कराती रहती है। भ्रम और भ्रमण यही बन जाते हैं—जीव के जीवन की नियति। समझ में नहीं आता कि भ्रमण के कारण भ्रम हो रहा है अथवा भ्रम के कारण भ्रमण हो रहा है, पर होता यही है। जन्म के बाद जन्म बीतते हैं, जीवन के पश्चात जीवन बीतते हैं और इस प्रकार यह यात्रा चलती रहती है। न इसमें विराम मिलता है और न कभी विश्रांति आती है।

संसार का जीवनक्रम, उसे अपने पर भरोसा करना सिखाता है। इस अपने पर भरोसा करने का मतलब होता है—अहं पर भरोसा करना, अहंता पर भरोसा करना, अहंमन्यता पर भरोसा करना। यह भरोसा कितना भी किया जाए, कितनी बार भी किया जाए, पर कहीं-न-कहीं कमजोर पड़ता है, टूटता है। संसार के घटनाक्रम इसे तोड़ते-बिखेरते रहते हैं। बड़ी पावन घड़ी तब आती है, जब जीव भगवान को पुकार ले अथवा भगवान उसे स्वयं पुकार लें।

►युवाक्रांति वर्ष◄

यह संयोग जब घटित होता है, भले ही यह किसी भी कारण घटित हो, तब जीव का भ्रम व उसका भ्रमण समाप्त हो जाते हैं। तब उसे मिलता है—परम सुख व परम शांति। इस सत्य को उद्घाटित करने वाली एक बड़ी रोचक कथा है—भक्त उपमन्यु की। उपमन्यु ने अपने बचपन में अपनी माता से कहा—"माँ! मुझे दूध पिलाओ।" उपमन्यु ने अपने मामा के बेटे को दूध पीते हुए देखा था। इसे देखकर उसका भी मन मचल उठा और उसने भी अपनी माँ से दूध की माँग कर डाली। गरीब माँ भला दूध कहाँ से लाती। उसने उपमन्यु से कहा—"बेटा! हम लोग गरीब हैं। हमारे घर में तो अन्न का भी अभाव है, भला ऐसे में हम लोग दूध किस तरह पा सकते हैं।" लेकिन जब उपमन्यु नहीं माना, तो बालहठ से विवश होकर उसकी माँ ने बीजों को पीसकर पानी में घोलकर उसे दे दिया, पर भला उनमें दूध का स्वाद कहाँ आता? उपमन्यु ने तो अपने मामा के घर में असली दूध चखा था। इसलिए उसने अपनी माँ से उसी की जिद की।

माता ने कहा—"पुत्र! संसार में तो सभी कुछ है, पर उसमें से हरेक की प्राप्ति भाग्य एवं पुरुषार्थ के संयोग से होती है।" बालक उपमन्यु ने कहा—"माँ! भाग्य क्या है?" इस पर माँ ने कहा—"पूर्वजन्मों के कर्मों का फल।" "और पुरुषार्थ क्या है?" उसके इस प्रश्न के उत्तर में माँ ने कहा—"इस जन्म के कर्म।" अब उपमन्यु ने प्रश्न किया—"श्रेष्ठतम भाग्य एवं श्रेष्ठतम पुरुषार्थ के लिए क्या करना चाहिए?" माँ ने कहा—"तप करना चाहिए।" उपमन्यु ने बचपन में शिव-पूजा सीखी थी। माँ ने उसे बताया था कि भगवान शिव सर्वसमर्थ हैं। वे अवढरदानी हैं, प्रसन्न होने पर कुछ भी दे सकते हैं।

उपमन्यु को माँ की सीख याद आ गई। उसने निश्चय किया कि वह तप करेगा। तप से वह अवढरदानी सदाशिव को प्रसन्न करेगा। अपने इस निश्चय को उसने माँ को बताया। माँ ने उसे तप करने की आज्ञा के साथ आशीर्वाद भी दिया कि भगवान शिव तुम्हारी भक्ति व तुम्हारे तप से प्रसन्न हों। बस, फिर क्या था, उपमन्यु ने हिमालय पहुँचकर घोर तप आरंभ किया। महादेव की प्रसन्नता के लिए उन्होंने अन्न का त्याग किया। फिर जल भी त्याग दिया। भक्त उपमन्यु का तप उग्र होता गया, भक्ति प्रगाढ़ होती गई और पुकार तीव्र होती गई। उपमन्यु के तप की ऊष्मा से सभी लोक, संतप्त होने लगे। तब भगवान श्रीनारायण ने मंदराचल पर जाकर भगवान शिव से कहा—"बालक उपमन्यु को तप से निवृत्त कर जगत को आश्वस्त करें।"

महेश्वर ने मुस्कराकर हामी भरी और वहाँ जा पहुँचे, जहाँ पर उपमन्यु कठोर तप में संलग्न था। उपमन्यु की परीक्षा लेने के लिए भगवान शिव ने इंद्र का रूप धारण कर उसकी परीक्षा ली, लेकिन उपमन्यु की भक्ति अडिग थी। वे अपनी आराधना में अविचल बने रहे। तब भगवान महेश्वर, भगवती आदिशक्ति जगन्माता के साथ उपमन्यु के सम्मुख प्रकट हुए और बोले—"मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, वर माँगो।" उत्तर में उपमन्यु ने कहा—"भगवन्! मैंने तो बड़ी क्षुद्र कामना से तप का आरंभ किया था, पर आपकी कृपा से अब कोई कामना नहीं रही। बस, आप दोनों मुझ पर करुणापूर्ण बने रहें।" इस पर भगवान शिव ने कहा—"वत्स! मैं तुम्हें दुग्ध के लिए कामधेनु प्रदान करता हूँ। यह दुग्ध के साथ तुम्हारी सभी कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ है।" इसके पश्चात माता पार्वती ने कहा—"पुत्र! मैं तुम्हें योगविद्या एवं ब्रह्मविद्या का वरदान देती हूँ।" भगवान के संस्पर्श से भक्त को सब कुछ मिल गया। ❑

शिष्यों ने गुरु से प्रश्न किया—"गुरुदेव! मनुष्य को जीवन में उन्नति व अवनति किसके कारण मिलती है?" गुरु ने उत्तर दिया—

"व्रजत्यध: प्रयात्युच्चैर्नर: स्वैरेव चेष्टितै:।
अध: कूपस्य खनक ऊर्ध्वं प्रासादकारक:॥

अर्थात मनुष्य अपने ही कर्मों के कारण नीचे गिरता है और उन्हीं से ऊपर चढ़ता है। कुएँ को खोदने वाला नीचे उतरता जाता है और महल बनाने वाला ऊपर चढ़ता जाता है।" शिष्यों को कहे का मर्म समझ में आ गया।

►युवाक्रांति वर्ष◄

दृष्टिकोण सही हो तो यह जीवन स्वर्ग बन जाए

जीवन क्या है? जीवन का अर्थ एवं मर्म क्या है? यह एक ऐसा प्रश्न है, जो आदिकाल से चला आ रहा है, जो युगों-युगों से पूछा जा रहा है। जीवन है और हम इसे क्यों जी रहे हैं, जीने का मकसद क्या है—यह हमें पता नहीं है। श्रुति की शरण में जाएँ तो वह कहती है कि हर व्यक्ति द्वारा जीवन के स्वरूप को समझा जाना चाहिए और उससे जुड़े तथ्यों को स्वीकार करना चाहिए। मनुष्य जीवन ईश्वरीय सत्ता की एक बहुमूल्य धरोहर है, जिसे उसकी सत्पात्रता पर विश्वास करके ही सौंपा जाता है।

मनुष्य के साथ अन्य जीवधारियों की तुलना में यहाँ कोई पक्षपात नहीं है, वरन ऊँचे अनुदान के लिए यह एक प्रयोग परीक्षण मात्र है। अन्य जीवधारी शरीर भर की बात सोचते हैं और उसी के अनुरूप क्रिया करते हैं, परंतु मनुष्य को स्रष्टा का उत्तराधिकारी युवराज होने के नाते अनेकानेक कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों को निभाना पड़ता है। उसी में उसकी गरिमा और सार्थकता है। यदि पेट-प्रजनन और लोभ-मोह तक उसकी गतिविधियाँ सीमित रहें तो उसे नर-पशु के अतिरिक्त और कहा भी क्या जा सकता है? लोभ, मोह के साथ अहंकार और जुड़ जाने पर तो बात और भी अधिक बिगड़ जाती है।

महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए उभरी अहंमन्यता अनेकों प्रकार के कुचक्र रचती और पतन-पराभव के गर्त में गिराती है। अहंता से प्रेरित व्यक्ति अनाचारी बनता है और दुष्ट, दुरात्मा एवं नर-पिशाच स्तर की आसुरी गतिविधियाँ अपनाता है। इस प्रकार मनुष्य जीवन जहाँ श्रेष्ठ सौभाग्य का प्रतीक होना चाहिए था, वहाँ वह दुर्भाग्य और दुर्गति का कारण बन जाता है। इसी को कह सकते हैं—वरदान को अभिशाप बना देना। दोनों की दिशाएँ हर किसी के लिए खुली हैं। जो इनमें से जिसे चाहता है, उसे चुन लेता है। मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का निर्माता कहा जा सकता है।

मनुष्य जीवन, ईश्वर का दिया हुआ अनमोल उपहार है। बस, इस उपहार के मूल्य को समझने की जरूरत है और उसे सँभालकर उसकी महत्ता का एहसास करने की आवश्यकता है। मनुष्य जीवन की बहुमूल्यता का अनुभव हो जाए तो जीवन में आने वाली सारी कष्ट-कठिनाइयाँ, अवरोध-कंटक, विघ्न-बाधाएँ हमें, हमारे उद्देश्य से भ्रमित नहीं कर सकती हैं।

जो जीवन को अहंकारपूर्ति का साधन मान लेते हैं, उनका जीवन अपने ही द्वारा निर्मित बाधाओं-विघ्नों एवं कठिनाइयों से भर जाता है, क्योंकि जीवन में कभी भी अहंकार की तुष्टि संभव नहीं हो सकती है। अहंकार तो स्वयं को सर्वश्रेष्ठ मानकर कुचक्र रचता है और इस कुचक्र में जीवन उलझकर धीरे-धीरे विनाश की ओर बढ़ने लगता है। जीवन समय के धागों से विनिर्मित एक परिधान है। पल, क्षण एवं घड़ी से निर्मित एक आवास है। समय ही प्रकृतिप्रदत्त वह संपदा है, जिसके बदले संसार की कोई भी उपलब्धि प्राप्त की जा सकती है और इसके बदले मनचाहा प्राप्त किया जा सकता है। यह तो इस तथ्य पर निर्भर करता है कि हम अपनी जीवन-ऊर्जा को किस दिशा की ओर उन्मुख करते हैं।

यदि हम अपनी जीवन-ऊर्जा को संसारिक वस्तुओं एवं उनके भोग-विलास की प्राप्ति की ओर लगाना प्रारंभ कर देते हैं तो इस बेशकीमती ऊर्जा से वैभव एवं भोग का अंबार खड़ा किया जा सकता है और उसे भोगा भी जा सकता है, परंतु इसके परिणामस्वरूप जीवन में जो क्षरण होता है, उसकी कोई भरपायी नहीं हो सकती है। अज्ञान एवं आसक्ति के वशीभूत इनसान ऐसी गलती करता रहता है और संसार के वैभव, ऐश्वर्य एवं भोग-विलास को सर्वोपरि मानकर उनमें लिप्त रहता है और अंत में उसकी जीवन-ऊर्जा इन्हीं में नष्ट हो जाती है, उसका सब कुछ चला जाता है और जीवन समाप्त हो जाता है।

जीवन जीने के लिए शरीर एक उपकरण एवं माध्यम के रूप में इसलिए प्राप्त हुआ है कि इस शरीर रूपी रथ में आत्मारूपी रथी अपने गंतव्य एवं मंतव्य तक पहुँच सके। आत्मा की यात्रा परमात्मा की ओर है, जहाँ केवल आनंद-ही-आनंद है, इसके अलावा और कुछ

नहीं है। यहाँ सुख, तृप्ति, तुष्टि का कोई अधिक महत्त्व नहीं है; क्योंकि ये सारे तो मन एवं इंद्रियजनित हैं। आनंद का अर्थ है—इंद्रियसुख के बिना सदैव आनंदित रहना। आनंद एक आत्मिक गुण है, जिसे सांसारिक वस्तुओं द्वारा किसी भी कीमत पर प्राप्त नहीं किया जा सकता है। इसलिए शरीर को भगवान का मंदिर मानकर और इसके अंदर जीवन देवता को प्रतिष्ठित कर इस आनंद की दिव्यानुभूति का रसास्वादन किया जा सकता है।

जीवन में रास-विलास भी प्राप्त किया जा सकता है और अभ्युदय का चरम लक्ष्य भी उपलब्ध किया जा सकता है। आवश्यकता है जीवन को उस दिशा में मोड़ने की, जिस दिशा में हम बढ़ना चाहते हैं और अपने अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति करना चाहते हैं। जीवन की सार्थकता उसके अपने दृष्टिकोण में है, साथ ही उसके द्वारा भावप्रवणता से किए गए कर्म में है। जीवन का आनंद किसी वस्तु या परिस्थिति में नहीं है, बल्कि जीने वाले के दृष्टिकोण में है। जीवन का आनंद—क्या हमको मिला है, उसमें नहीं है, बल्कि कैसे हम उसे अनुभव कर सकते हैं, किस तरह उसे प्राप्त करते हैं—उसमें है। जब हमारा दृष्टिकोण परिवर्तित हो जाता है, तब हमारा जीवन आनंदमय हो जाता है और फिर सत्कर्मों के माध्यम से हमारे चित्त पर छाए कुसंस्कार हटते चले जाते हैं। इसी प्रक्रिया से आत्मिक अभ्युदय होता है।

जीवन को जीने का जिसके पास सही दृष्टिकोण है, वह जीवन के रहस्य को समझ जाता है। जिस किसी के पास भी गंभीर पर्यवेक्षण करने की दृष्टि हो, वह इन गहराइयों तक पहुँच सकता है व जीवन की सूक्ष्मता को समझ सकता है। इस दृष्टि के सहारे वह जीवन से जुड़ी भ्रांतियों के कुहासे को भी मिटा सकता है और कई प्रकार के लोभ, मोह व आसक्तिजन्य खतरों से बच सकता है। इन खतरों को जो भाँप जाता है और उनसे बच निकलने की राह खोज लेता है, वही जीवन को कलाकार की तरह जी सकता है। कर्त्तव्य के रूप में जीवन अत्यंत भारी प्रतीत हो सकता है, परंतु दूसरी ओर जीवन को एक रंगमंच की भाँति भी लिया जा सकता है जहाँ एक अभिनेता की तरह हँसते-हँसाते हुए इसका विनोदपूर्ण मंचन कर आनंद लिया जा सकता है।

जीवन एक गीत है, जिसे मधुर स्वर में गाया जा सकता है। जीवन एक अवसर है, जिसे गँवा देने पर सब कुछ हाथ से निकल जाता है। जीवन एक स्वप्न है, जिसमें स्वयं को खोजा जा सके तो जीवन में भरपूर आनंद का रसास्वादन किया जा सकता है। जीवन एक प्रतिज्ञा है, जिसे पूरा करके उसी के आधार पर जीवन की दिशा को मोड़ा जा सकता है। जीवन एक यात्रा है और जो इसे यात्रा मान लेता है, वह किसी भी आकर्षक पड़ाव पर ठहरता नहीं है, केवल अपनी मंजिल की ओर बढ़ता चला जाता है। जीवन जीने की एक कला है और इसे कलाकार की तरह जिया जा सकता है। जीवन को सफल कैसे बनाया जाए, यदि इसका मर्म जान लिया जाए और इस दिशा में मनन कर लिया जाए तो फिर उससे बड़ा सौभाग्य कुछ और नहीं हो सकता। जीवन सौंदर्य है, प्रेम है, सत्-चित्-आनंद है। जीवन वह सब कुछ है, जो नियंता की इस सृष्टि में सर्वोत्तम कहा जाने योग्य है। हम उसे सही से जीकर तो दिखाएँ। ❑

एक राजा किसी बात पर एक संन्यासी से क्रोधित हो गया। उसने क्रोध में अपने सेनापति को उस संन्यासी को मारने का आदेश दिया। राजा का आदेश सुनकर संन्यासी बोला—"महाराज! मैं तो अस्तित्व में ही नहीं हूँ, फिर मुझे यह तलवार कैसे मार सकती है?" जिस शरीर के साथ मेरा कभी कोई संबंध ही नहीं रहा, जो पहले ही मुझसे अलग है—उसे आपकी तलवार और अलग कैसे करेगी?" उसके इन वचनों के साथ जब राजा ने उस संन्यासी की निर्भीक व निस्पृह आँखों को देखा तो उसने अपने सेनापति से कहा—"जो मृत्यु से भयभीत नहीं है, उसे तो मृत्यु भी नहीं मार सकती।" यह कहते हुए राजा ने संन्यासी से अपने व्यवहार के लिए क्षमा माँगी। महापुरुषों के लिए जीवन व मृत्यु, दोनों समान होते हैं।

बल नहीं, शक्ति का करें अर्जन

शक्ति और बल में अंतर उनके स्त्रीवाचक एवं पुरुषवाचक होने के कारण माना जाता है। इस प्रकार दोनों की प्रवृत्ति के स्वरूप में भी स्वाभाविक भेद उत्पन्न होता है। शक्ति, स्त्रैण भाव को प्रखरता देकर अपनी श्रेष्ठता स्थापित करती है। बल में उच्चारण के स्तर पर ही गर्व की अभिव्यक्ति अधिक है; जबकि शक्ति, सहनशीलता है, जो विवेक के साथ सकारात्मकता को अभिव्यक्त करती है। शक्ति में समूचा अस्तित्व सिमटा है। जड़-चेतन इसी के रूप हैं। कहीं इसकी शिथिलता झलकती है, तो कहीं इसकी सक्रियता के दर्शन होते हैं। जीवन के विविध रूप इसी से प्रकटे हुए हैं। पशु-पक्षियों में, वृक्ष-वनस्पतियों में इसी की चेतना लहराती है। यही ऊर्जा गति-प्रगति, विकास-विस्तार के अनेक रूप धरती है। सचमुच ही जीवन और जगत शक्तिमय हैं। शक्ति के सिवाय यहाँ कुछ भी नहीं है।

शक्ति के बिना संसार का कोई महत्त्व नहीं है और न ही जीवन का कोई मूल्य है। शक्तिलीला का यह रहस्य मानव-जीवन में सबसे गहरा है। स्थूल, सूक्ष्म एवं कारणशरीर इसी के आधार पर अपनी स्थिति एवं महत्त्व रखते हैं। पंचकोश—अन्नमय, मनोमय, प्राणमय, विज्ञानमय एवं आनंदमय कोश शक्ति की विविध रहस्यमयी धाराओं को ही प्रकट करते हैं। स्थूल एवं सूक्ष्मशरीर में उपस्थित चक्रों में शक्ति का यह महासागर लहराता है। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा एवं सहस्रार चक्र में महाशक्ति अपने अनेक रहस्यों को उजागर करती है। कुंडलिनी महाशक्ति तो जैसे मानव जीवन का अधिष्ठान ही है। जगन्माता आदिशक्ति स्वयं ही इस परम रूप में प्रतिष्ठित होकर मानवीय जीवन को सर्वश्रेष्ठ होने का गौरव प्रदान करती हैं।

जब बात बल की आती है तो इसका तात्पर्य विशुद्ध रूप से ताकत से होता है। वह ताकत, जो केवल अपने वर्चस्व को स्थापित करने के लिए बिना अच्छे-बुरे का भेद किए अवसरों की तलाश में रहती है। ताकत के लिए मर्यादा एवं नैतिकता का अधिक महत्त्व नहीं होता है। ताकत तो बस, अपने को प्रतिष्ठित करने के लिए अवसरों की तलाश में रहती है। शक्ति में नैतिकता एवं अनैतिकता की मर्यादा सन्निहित है। शक्ति प्रेरित करती है कि हम कैसे सन्मार्ग की ओर अग्रसर हों। आधुनिक प्रतिस्पर्द्धा के युग में बल को सफलता की कुंजी माना जाने लगा है और लोग लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अपनी स्वप्रेरणा की शक्ति को नेपथ्य में रखकर अपने बल पर अधिक विश्वास करते हैं। इसलिए इस भौतिकवादी युग में दैनिक जीवन में ताकत और बल का सदुपयोग कम और दुरुपयोग अधिक देखा जाता है।

बल के अनेक रूपों के आधार पर भौतिक संपदाओं और प्राणी समुदायों, दोनों पर आधिपत्य करना आसान माना जाता है। वर्तमान समय में अर्थबल को अत्यधिक महत्त्व दिया जाने लगा है। इसके सामने शेष सारे बल महत्त्वहीन नजर आते हैं। व्यक्ति, परिवार और समाज सभी स्थानों पर आज अर्थ या धन ही सर्वोपरि प्रभाव दिखाता नजर आता है। जिसके पास अर्थबल है, वह सर्वशक्तिमान के समान पूजित हो रहा है और अर्थहीन को उपेक्षा, अपमान एवं तिरस्कार का सामना करना पड़ता है। इसी प्रकार राजबल इससे भी आकर्षक बन गया है; क्योंकि इसके आधार पर प्रतिष्ठा उपलब्ध करने के साथ-साथ अर्थबल को भी प्राप्त किया जा सकता है। आज राजबल का जितना दुरुपयोग किया जा रहा है, इससे पहले संभवत: ही कभी हुआ हो।

इस प्रकार ये बल अपने-अपने प्रभाव-क्षेत्र का भरपूर दोहन कर अपने अस्तित्व को कायम रखने में संलग्न दीखते हैं। जीव समुदाय में मनुष्य को श्रेष्ठ माना गया है, परंतु जब वह अपनी मानवता के स्तर से गिरकर पशुता या पाशिवकबल का प्रयोग करता है तो वह समाज में डर, भय व आतंक के वातावरण को जन्म देता है। इसके चंगुल में फँसकर इनसानी रिश्ते भी तार-तार होने लग जाते हैं और समाज पतन, पराभव की ओर अग्रसर होने लगता है।

►युवाक्रांति वर्ष◄

स्पष्ट है कि वर्तमान परिस्थितियों, विभीषिकाओं का कारण शक्ति की अपेक्षा बल को वरीयता देना है। परंतु ऐसी स्थिति अधिक समय तक चलेगी नहीं, क्योंकि शक्ति स्वयं आदिशक्ति माता भगवती का प्रतीक और पर्याय है और इसलिए ऋषि कहते हैं—हे जगज्जननी! आपकी कृपा से हम अपने अंत:करण में इस ऋषिवाणी को अनुभव करते हैं—

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः॥

"हे देवी! समस्त संसार की सब विद्याएँ तुम्हीं से निकली हैं, जगत में जितनी स्त्रियाँ हैं, वे सब तुम्हारी ही मूर्तियाँ हैं। हे जगदंबे! एकमात्र तुमने ही इस विश्व को व्याप्त कर रखा है। तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है? तुम तो स्तवनयोग्य पदार्थों से परे और परावाणी हो।"

शक्ति के इस रहस्य को जानकर ही शक्ति का सदुपयोग किया जा सकता है और इसके लिए आवश्यक है—शक्तिसंचय। इसके बिना न तो शक्ति-पूजा बन पड़ती है और न ही जीवन में इसके सुफल मिल पाते हैं। जहाँ शक्ति का संचय होता है, वहीं शुभ संस्कार व शांति के पुष्प बरसते हैं। इसके विपरीत जहाँ शक्ति का अभाव होता है, वहाँ दु:ख, कष्ट व कलह के काँटे ही बिखरे रहते हैं। शक्तिहीन व्यक्ति सर्वत्र उपेक्षित एवं अपमानित होता है। शक्तिहीन व्यक्ति दीन-दु:खी एवं निर्बल होकर केवल अपनी सहायता की बाट जोहता है। ऐसे लोगों की कोई भी सहायता नहीं करता है। परंतु जो शक्ति का संचय करते हैं, उन्हें ही समर्थ, बलवान, बुद्धिमान व सौभाग्यशाली कहा जाता है। शक्तिसंचय की उपेक्षा करने वाले को असहाय, अशक्त, निर्बल, दुर्बल और दरिद्र कहलाकर पग-पग पर अपने दुर्भाग्य की गंभीर यातना सहनी पड़ती है।

जो शक्तिमान बनना चाहते हैं, उन्हें शक्ति को व्यर्थ बहने से रोकना पड़ेगा और शक्तिसंचय के लिए कमर कसनी पड़ेगी। उनको अभी और इसी क्षण से माँ महाशक्ति की पूजा के लिए पंचोपचार की तैयारी करनी होगी। इन पंचोपचारों में हैं—(१) शारीरिक शक्ति, (२) मानसिक शक्ति, (३) भावनात्मक शक्ति, (४) आर्थिक शक्ति एवं (५) आध्यात्मिक शक्ति। शक्ति के अभाव में शरीर दुर्बल एवं अशक्त हो जाता है और रोगों का घर बन जाता है। मन में शक्ति न हो तो व्यक्ति विचारहीन, कल्पनाहीन एवं संकल्प से वंचित हो जाता है। भावनाशक्ति के अभाव में व्यक्ति के रिश्ते एवं संबंध मृतप्राय हो जाते हैं और कोई अपना कहने लायक नहीं रह जाता है। आर्थिक शक्ति का अभाव व्यक्ति को दीन-हीन, गरीब एवं दरिद्र बना देता है। अध्यात्मिक शक्ति के बिना जीवन की अमर यात्रा संभव नहीं हो सकती। इसके बिना यह पता नहीं चल पाता है कि इस संसार के परे भी एक संसार है और हम इस आभासी संसार को एक सत्य मानकर जीते रहते हैं। आध्यात्मिक शक्ति से इस भ्रम का निराकरण होता है और वास्तविक सत्य से परिचय मिलता है।

इस प्रकार इन पाँचों शक्तियों का अभाव ही मनुष्य को पीड़ा की प्रताड़ना सहने के लिए विवश करता है। इन्हीं पाँचों शक्तियों की बरबादी मनुष्य को पतन के गहरे अँधेरे में धकेलती है; जबकि इन पाँचों शक्तियों के संचय से व्यक्ति, लोक व परलोक में समृद्ध और संपन्न होता है। इनके संचय से व्यक्ति की प्रसन्नता शतगुणित होती है और वह सत्कर्म करते हुए निरंतर उत्थान के सोपानों पर चढ़ता है। इसलिए शक्ति के संचय एवं सदुपयोग से जीवन धन्य हो जाता है और इसके विपरीत बल के अहंकार से केवल विनाश के अलावा और कुछ भी हस्तगत नहीं होता है। अत: हमें बल के घमंड से बचते हुए, शक्तिसंचय करते हुए श्रेष्ठ मार्ग पर बढ़ना चाहिए। ❑

महतामथ क्षुद्राणामंतराये उपस्थिते।
कृशानौ कनकस्येव परीक्षा जायते ध्रुवम्॥

अर्थात अग्नि में जैसे स्वर्ण की परीक्षा होती है, उसी प्रकार विघ्न-बाधाओं के उपस्थित होने पर निश्चित रूप से महान और क्षुद्र लोगों की परीक्षा होती है।

राम को ले जाने अयोध्या पहुँचे ऋषिश्रेष्ठ

इन बातों के क्रम में साँझ ढल चुकी थी। रात्रि का अँधेरा धरती एवं आकाश पर छाने लगा था। निशा देवी, तारों की ओढ़नी ओढ़ चुकी थीं। चंद्रदेव उनकी इस शोभा को निहारते हुए चारों ओर अति उदारतापूर्वक चाँदनी बिखेर रहे थे। महर्षि विश्वामित्र ने दृष्टि उठाकर इस दृश्य को देखा और आगे बढ़ चले। उनके साथ महर्षि वसिष्ठ भी थे, जो उन्हें उनके कक्ष तक पहुँचाने के लिए साथ चल रहे थे। इस बीच उनमें परस्पर कोई बात नहीं हुई। बस, शांत भाव से वे साथ चलते रहे। थोड़ी ही देर में उनका वह कक्ष आ गया, जहाँ उनके लिए रात्रिविश्राम की व्यवस्था की गई थी। विश्वामित्र को उस कक्ष में छोड़कर वसिष्ठ अपने निवास की ओर चल पड़े, जहाँ देवी अरुंधती उनकी प्रतीक्षा कर रही थीं। विश्वामित्र यहाँ आकर व वसिष्ठ से मिलकर अभिभूत थे। उन्होंने ऋषि वसिष्ठ और देवी अरुंधती का जीवन देखा। उनकी सहजता और ब्रह्मपरायणता देखी। ये दोनों ऋषियुग्म प्रत्येक अवस्था में, जीवन के प्रत्येक घटनाक्रम में तृप्त थे, तुष्ट थे और शांत थे। उनमें परम वीतरागता थी।

इसे देखकर व अनुभव कर उन्होंने इस अनुभूति को स्वयं में समेटते हुए निशा देवी को प्रणाम किया और निद्रा में लीन हो गए। उनकी यह निद्रा भी समाधि की ही एक अवस्था थी। इसी अवस्था में रात्रि की अवधि व्यतीत हुई और ब्रह्मवेला आ पहुँची। उन्होंने नित्यकर्मों से निवृत्त होकर आद्यशक्ति भगवती गायत्रीचेतना में अपने चित्त, चिंतन व चेतना को निमग्न किया। उनकी यह निमग्नता जब भंग हुई, तब उन्होंने अपने सम्मुख ऋषि वसिष्ठ को देखा। उनके साथ महाराज दशरथ के महामंत्री सुमंत्र थे। जिन्होंने बताया कि महाराज राजमहल में उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। आप दोनों मेरे साथ पधारेंगे तो अनुग्रह होगा। सुमंत्र की विनम्रता, शालीनता में अयोध्या की संस्कृति व संस्कार प्रत्यक्ष हो रहे थे। विश्वामित्र ने उनकी बातें सुनकर वसिष्ठ की ओर देखा और साथ चल पड़े। वसिष्ठ के आश्रम से लेकर राजभवन तक की उनकी यात्रा राजकीय रथ में संपन्न हुई। आज इस रथ के सारथी का दायित्व स्वयं सुमंत्र वहन कर रहे थे।

राजभवन पहुँचकर उन्होंने देखा कि महाराज दशरथ द्वार पर स्वयं उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। वे बड़े आदर के साथ इन महर्षियों को अपने साथ भवन के अंदर ले गए, जहाँ महारानियाँ उनकी प्रतीक्षा कर रही थीं। उन्होंने अर्घ्य, पाद्य आदि से इनका सत्कार किया और आदरपूर्वक इन्हें आसन पर बिठाया। महारानियों ने चारों राजकुमारों को भी इन्हें प्रणाम करने के लिए बुलाया। राजकुमारों ने इन्हें अपनी रीति व संस्कृति के अनुसार श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। इन्हें प्रणाम करते हुए विश्वामित्र ने इन सबको ध्यान से देखा। जब राम उनके चरणस्पर्श कर रहे थे, तब उन्हें विलक्षण आध्यात्मिक अनुभूति हुई। उन्हें रोमांच हो आया। शिष्टाचार व भेंट के उपरांत सभी अपने-अपने स्थान पर चले गए।

महाराज दशरथ को उत्सुकता थी, प्रतीक्षा थी— ब्रह्मर्षि विश्वामित्र के आगमन का प्रयोजन जानने की। उन्होंने इस संबंध में कहा तो कुछ भी नहीं, लेकिन उनके अंतर्भाव उनके मुख पर सुस्पष्ट थे। महाराज के मुख पर अंकित इन भावों की स्पष्टता को देखते हुए विश्वामित्र ने सिद्धाश्रम और उसके आस-पास के संपूर्ण क्षेत्र की स्थिति का वर्णन किया। ताड़का-सुबाहु व मारीच एवं उनके अनुचरों-सहचरों द्वारा फैलाए जा रहे आतंक की बात विस्तारपूर्वक कही। ऋषियों, मुनियों, मनस्वियों व तपस्वियों पर हो रहे अत्याचारों की घटनाएँ सुनाईं। ये सारी बातें कहकर उन्होंने महाराज से कहा—"महाराज दशरथ! इस आतंक के विनाश के लिए, जनकल्याण के लिए मैं आपसे, आपके राम को माँगता हूँ।"

विश्वामित्र के मुख से राम को माँगने की बात सुनकर दशरथ का अंतर्मन काँप उठा। वे कुछ भी न कह सके। बस, कातर नेत्रों से वसिष्ठ की ओर देखने लगे। इधर विश्वामित्र कह रहे थे—"राजन्! आप रघुकुल के गौरव हैं। आप अपने वंश और पूर्वजों के प्रताप को भली भाँति जानते हैं। आपके वंश ने, आपके पूर्वजों ने

►युवाक्रांति वर्ष◄

जनकल्याण के लिए बड़े-से-बड़े कार्य किए हैं। महान त्याग एवं महानतम पुरुषार्थ किए हैं। मैं तो बस, जनहित के लिए आपके द्वार पर याचक बनकर आया हूँ।" विश्वामित्र अपने कथन में शब्दों की लड़ियाँ जोड़ रहे थे, लेकिन इसी के साथ दशरथ को अपने प्राणों की डोर टूटती लग रही थी। जब वे अभी तक कुछ भी न कह सके तो वसिष्ठ ने उनकी ओर देखते हुए कहा—"व्यर्थ चिंता न करें राजन्! राम, महर्षि विश्वामित्र के साथ न केवल सकुशल व सुरक्षित रहेंगे, बल्कि उनका जीवनपथ भी प्रशस्त होगा।"

वसिष्ठ की बातों से उन्हें थोड़ी आश्वस्ति मिली। फिर उन्होंने आतंकित करने वाले असुरों को नष्ट करने के लिए सेना भेजने का विकल्प प्रस्तुत किया। इस पर वसिष्ठ ने उन्हें समझाते हुए कहा—"राजन्! अभी के समय में यह विकल्प उचित नहीं है। धरती पर सभी आसुरी गतिविधियों का केंद्र दशानन है। यदि उसने सेना के प्रत्युत्तर में अपनी सैन्यशक्ति का प्रयोग किया तो महायुद्ध छिड़ने की संभावना प्रबल हो जाएगी और अभी के समय में यह उपयुक्त नहीं है। लंकानरेश दशानन युद्धोन्मादी है। उसके इस युद्धोन्माद में आर्यावर्त को भारी छति होगी। इसलिए अभी की स्थिति में वही उचित है, जिसके लिए महर्षि विश्वामित्र आग्रह कर रहे हैं। आप आश्वस्त और विश्वस्त रहें कि विश्वामित्र का कार्य संपन्न करके जब वत्स राम वापस आएँगे तो वे अधिक समर्थ, अधिक सक्षम व अधिक कुशल होकर लौटेंगे। इसमें तनिक भी संशय नहीं है।"

वसिष्ठ के ये शब्द महाराज दशरथ पर अमृत की बूँदों की भाँति बरस रहे थे। इनसे उन्हें असीम तृप्ति और शांति मिल रही थी। उनकी चेतना में जैसे नवप्राणों का संचार हुआ। उन्हें अपने अंतर्भावों में जागरण का अनुभव हुआ। उन्होंने आँखें उठाकर अपने सामने देखा, ब्रह्मर्षि विश्वामित्र एवं ब्रह्मर्षि वसिष्ठ बैठे हुए थे। उन्होंने दोनों को विनम्रता से प्रणाम करते हुए कहा—"मैं आभारी हूँ आप दोनों का कि आपने मुझे मेरे कर्त्तव्य का स्मरण कराया। मैं जानता हूँ कि मोह, मनुष्य को दुर्बल कर देता है और कर्त्तव्य उसे समर्थ बनाता है। वत्स राम अवश्य ब्रह्मर्षि विश्वामित्र के साथ जाएँगे। ब्रह्मर्षि का संसर्ग, सान्निध्य व संपर्क उन्हें निश्चित ही समर्थ बनाएगा और वे रघुवंश का मान व गौरव बढ़ाएँगे।" दशरथ को ये शब्द कहते हुए ऐसा लग रहा था, जैसे उनके अंतर्गगन में कोई गहरा कुहासा छाया हुआ था, जो अब छँट चुका है। वे स्वयं में नवीन प्राण व नवीन प्रकाश का अनुभव कर रहे थे।

उन्होंने एक सेवक से कहकर महामंत्री सुमंत्र को बुलाया। उनके आ जाने पर उन्होंने ब्रह्मर्षि विश्वामित्र के आगमन का उद्देश्य बताते हुए कहा—"वत्स राम को ब्रह्मर्षि के साथ जाकर अपने पूर्वजों की भाँति अपना पराक्रम सिद्ध करना है। इसकी सूचना वत्स राम तक पहुँचाई जाए। महारानियों तक यह सूचना मैं स्वयं पहुँचाऊँगा।" महाराज दशरथ जब यह सब कह रहे थे तो सुमंत्र उन्हें ध्यान से देख रहे थे। उनके मुख पर अप्रत्याशित उल्लास था। ऐसा उल्लास जो एक महापराक्रमी योद्धा को रणभूमि जाते समय होता है। महामंत्री सुमंत्र इस सत्य को जानते थे कि महाराज दशरथ महापराक्रमी योद्धा हैं। वे स्वयं कई युद्धों में महाराज के साथ रह चुके थे। कुछ युद्धों में तो उन्होंने असुरों के विरुद्ध देवराज इंद्र की सहायता भी की थी। तभी से देवराज उन्हें अपना परम मित्र मानते थे। आज सुमंत्र को महाराज दशरथ में वही पुराना शौर्य दिखाई दे रहा था। उन्होंने मुस्कराते हुए आज्ञापालन की तत्परता दिखाई। महाराज इन महर्षियों से अनुमति लेकर महारानियों को यह सूचना देने के लिए अंतःपुर को चल पड़े। ❑

युग-परिवर्तन के आधार को यदि एक शब्द में व्यक्त करना हो तो इतना कहने भर से भी काम चल सकता है कि अगले दिनों निष्ठुर स्वार्थपरता को निरस्त करके उसके स्थान पर उदार भाव-संवेदनाओं को अंतःकरण की गहराई में प्रतिष्ठित करने की, उभारने की, खोद निकालने की अथवा बाहर से सराबोर कर देने की आवश्यकता पड़ेगी।

—परमपूज्य गुरुदेव

▶युवाक्रांति वर्ष◀

राष्ट्रीय-चेतना का महाकाव्य है रामायण

कवीन्द्रं नौमि वाल्मीकिं यस्य रामायणीकथाम्।
चन्द्रिकामिव चिन्वन्ति चकोरा इव साधवः॥

अर्थात मैं इंद्र के समान महाकवि वाल्मीकि को श्रद्धा के साथ नमन करता हूँ, जिनके द्वारा प्रणीत रामकथा—साधु, संतों को उसी प्रकार आनंदित करती है, जिस प्रकार चंद्रज्योत्सना—चकोरों को।

विश्व के सर्वप्रथम कवि, आदिकवि महर्षि वाल्मीकि विश्व का काव्यस्रोत मानी जाने वाली रामायण के रचयिता हैं। रामायण एक ऐसा प्रथम संस्कृत महाकाव्य है, जिसे भारतीय संस्कृति के आधारभूत ग्रंथों में स्थान प्राप्त है। रामायण में रामकथा के माध्यम से भारतीय जीवन और जनमानस को पूर्ण भक्ति, अध्यात्म, धर्म और निष्ठा से अनुप्राणित करने के प्रयत्न हुए हैं। भारतीय समाज, संस्कृति और साहित्य में रामायण का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

रामायण एक अलौकिक एवं प्रेरणादायी ग्रंथ है, जो न केवल धार्मिक दृष्टिकोण से पूज्य है, वरन साहित्य एवं रचनाधर्मिता के धरातल पर भी सर्वोत्कृष्ट, अद्वितीय एवं अनुपम ग्रंथ है। रामायण हमारे जीवन की नियामक है, जीवन प्रबंधन की सर्वोत्कृष्ट कृति है। इसमें जीवन के सभी आयाम परिलक्षित होते हैं और महत्ता के साथ स्थान पाते हैं। रामायण एक कालजयी कृति है, जिसकी रचना करके आदिकवि वाल्मीकि भी कालजयी हो गए हैं।

महाकाव्य रामायण के रचनाकार महर्षि वाल्मीकि के जीवन चरित्र पर पूर्णरूपेण प्रकाश नहीं पड़ा है। उनकी जीवनलीला अभी तक अनछुई एवं अछूती रही है। उनका आश्रम इलाहाबाद में गंगा-यमुना के संगम से लगभग ३०-३५ किलोमीटर दूर पूर्व की ओर बताया गया है। यहाँ से कैमूर की पहाड़ियों से निकली तमसा नदी बहती है। इस नदी के दाएँ इनका आश्रम आज भी अवस्थित है। महर्षि की जन्मस्थली के विषय में इतिहास लगभग मौन है। इतिहासकार इन अनछुए पहलुओं को अभी तक खोज नहीं पाए हैं। संभवतः कई हजार वर्ष पूर्व की घटना होने के कारण उनके जीवन चरित्र पर इतिहास की मोटी परत जम गई है और उसे जानने के लिए हमें केवल जनश्रुतियों एवं किंवदंतियों पर आश्रित रहना होता है। इनसे केवल इतना पता चलता है कि महर्षि वाल्मीकि, प्रचेता वरुण के दसवें पुत्र थे और उनकी जन्मदात्री माता का नाम चार्किणी था।

रामायण उत्तरवैदिक काल की, परंतु महाभारत से पूर्व की रचना मानी जाती है। विभिन्न ग्रंथों में हमें महर्षि वाल्मीकि के कई रूप दृष्टिगोचर होते हैं। तैत्तरीय प्रातिशक्य में वैयाकरण वाल्मीकि के रूप में निरूपित हुए हैं। कई पुराणों में महर्षि वाल्मीकि के रूप में उनका उल्लेख मिलता है। कृतिवास रामायण में च्यवन के पुत्र के रूप में वाल्मीकि का वर्णन मिलता है। अध्यात्म रामायण में वैशाख पुत्र वाल्मीकि के रूप में मिलते हैं। रामायण के रचनाकाल के संदर्भ में भी विद्वानों में मतैक्य नहीं है। पाश्चात्य इतिहासकार प्रोफेसर मोनियर विलियम्स इसे ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी की रचना मानते हैं। डॉ० कीथ के अनुसार, यह ईसा पूर्व चौथी शताब्दी की रचना है। डॉ० विंटर निट्ज के विचार में रामायण का रचनाकाल ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी है।

भारतीय धर्मग्रंथ एवं पुराणों में वाल्मीकि के बारे में अनेकानेक उल्लेख मिलते हैं। डॉ० मंजुला सहदेव के अनुसार, वाल्मीकि शब्द की उत्पत्ति—**वल्मीक भवः इति वाल्मीकि**—अर्थात जो दीमकों की बाँबी से पैदा हुए हों। मान्यता है कि जब ऋषि-मुनि तपस्या करते थे तो उनके शरीर के ऊपर दीमक बाँबी बना लेती थीं, इसी को वाल्मीकि कहने का उल्लेख मिलता है। ऋषि वाल्मीकि भी इसी प्रकार के एक उत्कट तपस्वी थे। रामायण के अयोध्या कांड के एक श्लोक को शांतिपर्व (महाभारत) में अक्षरशः उद्धृत किया गया है तथा शांतिपर्व में उल्लेखित भार्गव को ही वाल्मीकि कहा गया है। डॉ० प्रभाकर माचवे के अनुसार, महर्षि वाल्मीकि का संबंध एक ब्राह्मणेतर वर्ग से था और वे अपनी विद्वता के आधार पर ही ब्राह्मणत्व की उपलब्धि प्राप्त कर सके थे।

महर्षि वाल्मीकि के संदर्भ में एक प्रसिद्ध घटना का उल्लेख मिलता है। एक बार महर्षि वाल्मीकि तमसा नदी, जिसे अब टोंक नदी कहते हैं, के तट पर अपने शिष्य भारद्वाज के साथ स्नान के लिए गए। वहाँ नदी के किनारे पेड़ पर क्रौंच पक्षी का एक जोड़ा प्रेममग्न था। तभी व्याध ने इस जोड़े में से नर क्रौंच पक्षी को अपने बाण से बेध दिया। रोती हुई मादा क्रौंच भयानक विलाप करने लगी तो करुणा के महासागर महर्षि वाल्मीकि का हृदय इतना द्रवित हुआ कि उनके मुख से अचानक यह श्लोक फूट पड़ा—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

(वाल्मीकि रामायण)

अर्थात हे निषाद! तुम चिरस्थायी प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं हो सकोगे, क्योंकि तुमने काम मोहित क्रौंच का वध कर दिया है। यह श्लोक कहते समय उनके साथ उनका शिष्य पटु भी था। गुरु वाल्मीकि ने उससे कहा कि यह जो मेरे शोकाकुल हृदय से निकल पड़ा है, उस काव्य के चार चरण हैं, हर चरण में बराबर संख्या में अक्षर हैं। इनमें से मानो तंत्री की लय गूँज रही है। मुझे इस करुणा को काव्य रूप प्रदान करना पड़ेगा।

पादबद्धोऽक्षरसमः तन्त्रीलयसमन्वितः।
शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा॥

(वाल्मीकि रामायण)

इस प्रकार उनकी करुणा से एक महाकाव्य का उदय हुआ, जिसके कारण वे विश्व के सर्वप्रथम कवि के रूप में प्रतिष्ठित हुए। उनकी करुणा इतनी थी कि जब उन्हें ध्यान आया कि उनके इन वचनों से व्याध को संताप पहुँच सकता है, तब भी वे करुणार्द्र हो उठे। ऐसा भी कहते हैं कि महर्षि वाल्मीकि ने अपने मन का कलुष दूर करने के लिए एवं व्याध को दिए गए शाप के परिष्कार के रूप में रामायण की रचना की।

रामायण एक ऐसी उत्कृष्ट एवं अनुपम रचना है, जिसमें हमें मानवता की प्रतिष्ठा, दुष्टों का दमन, अनीति का प्रतिकार, नारीशोषण का विरोध, मातृत्व प्रेम, प्रकृति चिंतन, युद्ध कौशल की रणनीति, जीवन प्रबंधन एवं जीवन जीने की कला, अध्यात्म के गूढ़ रहस्य, धर्म के विभिन्न आयाम, राजनीति, समाजनीति के अनायास ही दर्शन होते हैं। इसमें रसों के सभी रूपों का रसास्वादन भी होता है, यथा—

रसैः शृंगारकरुणाहास्य रौद्रभयानकैः।
वीरादिभी रसैर्युक्तं काव्यमेतदगायताम्॥

रामायण मात्र काव्य की दृष्टि से ही समृद्ध नहीं है, बल्कि महर्षि वाल्मीकि ने महाकाव्य में तत्कालीन समाज का जो चित्रण किया है, वह आज भी प्रासंगिक एवं उपादेय है। महर्षि वाल्मीकि की दृष्टि गंभीर एवं गहरी थी, इसलिए उनके विचार आज भी प्रासंगिक हैं। भारतीय संस्कृति में जिस समाज की सर्वोत्कृष्ट कल्पना की गई है, सुखी, संपन्न एवं सहकारयुक्त जिस समाज का चित्रण किया गया है, वह सब रामायण में वर्णित है। भगवान राम द्वारा निर्बलों, असहायों के प्रति जो गंभीर संवेदना अभिव्यक्त की गई है तथा अनीति एवं अत्याचार के विरुद्ध जिस निर्ममता से कुठाराघात किया गया है, वह सब महर्षि ने अपनी रामायण में अर्थपूर्ण ढंग से निरूपित किया है।

रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने भगवान राम के उत्कृष्ट चिंतन, उन्नत योजना-क्षमता, संवेदनशीलता एवं सभी को साथ लेकर चलने की जो नेतृत्व-क्षमता का परिचय दिया है, वह आज भी प्रासंगिक है; क्योंकि आज भी इस सूत्र का अनुवाद करके समस्त राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने का महान कार्य किया जा सकता है। रामायण के कई श्लोकों में राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता का सूत्र समाहित है। हम अपने माता-पिता, भाई-बंधु, पति-पत्नी, मित्र जैसे संबंधों का कैसे निर्वहन करें—इसकी सीख हमें वहाँ मिलती है। रामायण से हमें मातृभूमि से अगाध प्रेम एवं उसकी सेवा व रक्षा करने की प्रेरणा प्राप्त होती है। वस्तुतः यह राष्ट्रीय चेतना का महाकाव्य है।

महर्षि वाल्मीकि जी की प्रासंगिकता इसलिए भी है कि उन्होंने ही इस धरती से 'वसुधैव कुटुंबकम्' का उद्घोष किया—

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

अतः वाल्मीकि रामायण में मात्र मातृभूमि एवं राष्ट्रहित की उद्घोषणा नहीं है, बल्कि उसमें संपूर्ण मानव समाज एवं विश्व शांति की परिकल्पना सन्निहित है। वर्तमान समय में जब चारों ओर अशांति, असुरक्षा, भ्रष्टाचार, अनाचार, आतंकवादरूपी रावण का आतंक फैला हुआ है, ऐसे में वाल्मीकि रामायण की प्रासंगिकता और उपादेयता और भी बढ़ जाती है, बस, इसमें निहित जीवन दर्शन को चारों ओर फैलाने की आवश्यकता है। ❑

खान-पान हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग है और इसी के आधार पर हमारा स्वास्थ्य टिका हुआ है। हमारे शरीर व मन के निर्माण के साथ हमारे व्यक्तित्व का निर्माण भी खान-पान से जुड़ा होता है। खान-पान की मूल आदतें जो हमारे बचपन में पड़ जाती हैं, जीवन भर बनी रहती हैं। वैसे तो हर बच्चे का आरंभिक भोजन दूध होता है, लेकिन पाँच या छह महीने के बाद जो उसका अन्नप्राशन संस्कार किया जाता है, उसी से उसके अन्न ग्रहण करने की शुरुआत हो जाती है और इसी शुरुआत के साथ उसके जीवन में खान-पान की आदतें पड़नी शुरू हो जाती हैं।

सामान्यतया खान-पान में जो भोजन पसंद किया जाता है, उसका मुख्य संबंध स्वाद से होता है। जो भोजन जितना स्वादिष्ट होता है, उसे उतना ही पसंद किया जाता है। स्वाद की इसी दिलचस्पी ने आज अनेक तरह के व्यंजनों, पकवानों, भोजन की विविध प्रकार की थालियों का आविष्कार कर लिया है और समय रहते इसमें तरह-तरह के प्रयोग व बदलाव शामिल हुए हैं। स्वाद की इसी विविधता के कारण हमारे खान-पान के तौर-तरीकों में काफी बदलाव आया है, जिसका मुख्य असर हमारे स्वास्थ्य पर पड़ा है और इन सबके कारण बच्चों का स्वास्थ्य सबसे अधिक प्रभावित हुआ है। इसीलिए यह बहुत जरूरी है कि खान-पान की हमारी आदतें स्वाद के साथ-साथ सेहत के लिए भी हितकारी हों।

स्वाद एक ऐसी चीज है, जिस पर सबका नियंत्रण नहीं होता, फिर बच्चों का तो कहना ही क्या। उनके मन को तो विभिन्न तरह के स्वाद ललचाते हैं और उन्हें चखने के लिए वे मचल जाते हैं। इसलिए समय रहते बच्चों की खान-पान की आदत को सँभालना और बच्चों की सेहत सँवारना आज अभिभावकों के लिए एक बड़ी चुनौती बन गई है। अभिभावक बच्चों के बेहतर स्वास्थ्य के लिए हर संभव प्रयास करते हैं, लेकिन आधुनिक जीवनशैली के प्रभाव में आकर बच्चों का स्वास्थ्य लगातार बिगड़ता जा रहा है और जब तक बच्चे समझदार होते हैं, अपने खान-पान के प्रति सचेत हो पाते हैं, तब तक उनके हाथ से अपने स्वास्थ्य को बनाए रखने का समय काफी कुछ निकल चुका होता है। बहुत से बच्चे ऐसे होते हैं, जो असमय ही तरह-तरह की उन बीमारियों का शिकार हो जाते हैं, जिनका संबंध खान-पान की विकृतियों से जुड़ा होता है और जिन्हें सुधारकर पुनः स्वास्थ्य लाभ लिया जा सकता है, लेकिन कुछ बीमारियाँ ऐसी होती हैं, जो हमारे साथ जीवन भर के लिए जुड़ जाती हैं और हमारे स्वास्थ्य को कम या अधिक प्रभावित करती रहती हैं, जैसे—मधुमेह।

खान-पान की आदतों को सुधारना व सँवारना वैसे तो हर उम्र के व्यक्ति के लिए जरूरी है; क्योंकि समय के साथ आदतें हमारी बनती-बिगड़ती रहती हैं, लेकिन बचपन की आदतों में बदलाव लाना कठिन होता है। इसलिए बचपन में खान-पान की आदतों को सुधारना बेहद जरूरी है। वैसे देखा जाए तो हमारे शारीरिक स्वास्थ्य का मूल आधार बचपन में लिया गया भोजन है; क्योंकि इस अवस्था में हमारे शरीर का निर्माण हो रहा होता है और उसको पोषित करने में हमारा भोजन यानी खान-पान ही मुख्य आधार होता है। यदि इस अवस्था में शरीर को पोषित करने वाले तत्त्वों को ग्रहण किया जाए तो शरीर आश्चर्यजनक ढंग से सुविकसित, ऊर्जावान, संतुलित, सुगठित व स्वस्थ होता है।

हर परिवार में बच्चों के खान-पान की आदतें चिंता का विषय होती हैं; क्योंकि अभिभावकों द्वारा बार-बार कहने पर भी फल-सब्जियाँ न खाना और जंकफूड खाने की जिद करना बच्चों के लिए सामान्य बात है। इसके साथ जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते हैं, उनकी यह जिद और खाने को लेकर किया जाने वाला उनका चुनाव और भी चिंताजनक होता चला जाता है। अभिभावक इसके लिए चिंता तो करते हैं, लेकिन एक समय के बाद वे चाहकर भी बच्चों के खान-पान की आदतें नहीं सुधार सकते और इसका परिणाम यह होता है कि ये छोटी-छोटी आदतें आगे चलकर बीमारियों की बुनियाद बन जाती

हैं। इसलिए यह जरूरी है कि समय रहते ही अपने खान-पान की आदतों के प्रति हम सचेत हो जाएँ और बच्चों के खान-पान में विशेष सावधानी बरतें।

बच्चे खुद अपने स्वास्थ्य और सेहत के प्रति सजग नहीं हो सकते और न ही वे खान-पान की गलत आदतों के खतरों को समझ सकते हैं। उनका मन केवल स्वाद जानता है, इसलिए उनकी सेहत को नुकसान पहुँचाने वाली राह पर चलने से रोकने की मुख्य जिम्मेदारी अभिभावकों के कंधों पर ही है। इसलिए उनके स्वाद को ध्यान में रखते हुए उनके खान-पान के तौर-तरीकों में समय रहते बदलाव जरूरी है और इसके लिए यह आवश्यक है कि उन्हें खान-पान से जुड़ी हुई जरूरी बातों का ज्ञान कराया जाए। कौन-सा भोजन हमारे स्वास्थ्य व सेहत का पोषण करता है और कौन-सा भोजन हमें बीमार व रोगग्रस्त बनाता है, इसकी जानकारी उन्हें भोजन के माध्यम से देनी चाहिए, ताकि वे अपने जीवन में भोजन के प्रभाव को देख सकें व जान सकें।

आजकल कम उम्र में ही बच्चों को कई बीमारियाँ घेर रही हैं, जिनकी सबसे बड़ी वजह विकृत जीवनशैली है, जिसमें खान-पान की बिगड़ी हुई आदतें सबसे मुख्य कारण हैं। इसलिए बच्चों को सेहतमंद बनाने के लिए उन्हें सही पोषक तत्त्वों से युक्त भोजन ग्रहण करने के लिए समझाना व मनवाना जरूरी है। विज्ञापनों के प्रचार व दूसरों की देखा-देखी भी बच्चों में कुपोषित भोजन लेने की आदतें पड़ जाती हैं, जो कि मोटापे का मुख्य कारण बनती हैं और स्वास्थ्य को भी बहुत नुकसान पहुँचाती हैं, इसलिए बच्चों को खान-पान की बिगड़ी आदतों से बचाना बहुत जरूरी है।

जहाँ तक संभव हो, बच्चों को घर का खाना खिलाने की आदत डाली जाए और इसके फायदे बताए जाएँ। घर के खाने में ही स्वाद घोलने से बच्चों के मन को नियंत्रित किया जा सकता है और उनके खान-पान की आदतों को सुधारा जा सकता है। विशेषज्ञों का मानना है कि खाने की आदतें बच्चों के व्यवहार को बहुत प्रभावित करती हैं। इतना ही नहीं बिगड़ता खान-पान अनियमित दिनचर्या की एक बड़ी वजह बनता है, जिसके परिणामस्वरूप बड़ी बीमारियाँ शरीर को घेर लेती हैं, जिनसे आसानी से छुटकारा पाना मुश्किल होता है।

बच्चे देखकर ही तो सीखते हैं, दूसरों की नकल करते हैं, इसलिए यदि बच्चों की खान-पान की आदतों को बदलना है तो सबसे पहले घर के बड़े सदस्यों को अपनी खान-पान की आदतें सुधारनी होंगी, उनके संपर्क में आने वाले लोगों को अपनी आदतें बदलनी होंगी, तभी ऐसा संभव हो सकता है। बच्चों के भोजन में फल, सूखा मेवा, अंकुरित अन्न, सब्जियाँ, फलों का रस, दूध आदि को शामिल करना चाहिए व उन्हें ताजा बना हुआ भोजन खिलाना चाहिए। कुछ बच्चे बहुत कम भोजन करते हैं और कुछ बहुत ज्यादा भोजन करते हैं, दोनों ही स्थितियाँ ठीक नहीं हैं और उनके स्वास्थ्य के लिए नुकसानदायक हैं। यदि यह स्थिति नियंत्रण में न आए तो इस संदर्भ में विशेषज्ञों की सलाह लेना फायदेमंद हो सकता है। खाने को लेकर बच्चों को डाँटना, उन्हें बार-बार टोकना ठीक नहीं है, इससे वे अवसादग्रस्त हो सकते हैं या फिर मनोग्रंथियों का शिकार हो सकते हैं। इसके लिए उन्हें प्यार से समझाना, थोड़ी उनकी मानना और थोड़ी अपनी मनवाना ठीक है।

अपनी या फिर बच्चों की खान-पान की आदतें यदि सुधारनी हैं तो फिर जबरदस्ती से काम नहीं बनेगा, बल्कि बिगड़ेगा। जबरदस्ती अपनी बात थोपने से थोड़े समय के लिए तो सब कुछ सुधरा हुआ दीखता है, लेकिन जैसे ही व्यक्ति को स्वतंत्रता मिलती है वो पुनः अपनी मनमानी करने लगता है। इसलिए खान-पान की आदतों को बदलने के लिए स्वाद के साथ समझौता नहीं करना है, बल्कि समझदारी को अपनाते हुए खान-पान की सही आदतों को विकसित करना है। ❑

एक ज्ञानी व्यक्ति से किसी ने जिज्ञासा व्यक्त की—"मनुष्य का जीवन किस उद्देश्य के लिए मिलता है?" वे बोले—"*परोपकारार्थमिदं शरीरम्*—अर्थात मनुष्य का जीवन परोपकार करने के लिए मिलता है। यदि इस शरीर से मात्र स्वार्थसिद्धि की गई तो यह जीवन व्यर्थ चला जाता है।"

अदृष्ट का निर्धारण

विगत अंक में आपने पढ़ा कि परमपूज्य गुरुदेव के अज्ञातवास के दिनों में बहुत से साधकों को उनसे संपर्क का उपाय जानने का मन किया करता था। ऐसे साधकों के लिए परम वंदनीया माताजी ने प्रातःकाल की संध्या के समय गायत्री जप करते हुए हिमालय की ओर मुख करके प्राणायाम के साथ उनसे संपर्क करने का साधनात्मक विधान बताया। इस प्रयोग से अनेकों ने अपने जीवन के कठिन समयों पर गुरुदेव के निर्देशों को प्राप्त किया। इन दिनों परम वंदनीया माताजी ने कुछ लोगों पर आने वाले आवेशों से संबंधित भ्रम का निराकरण भी किया। इन्हीं दिनों भारत सरकार के प्रतिनिधि श्री अय्यर भी परम वंदनीया माताजी से मिलने शांतिकुंज आए। उन्होंने उनसे सूक्ष्मजगत में ऐसे प्रयोग करने का निवेदन किया, ताकि सीमा पर पनपती युद्ध की विभीषिकाओं पर नियंत्रण पाया जा सके। इस हस्तक्षेप का शुभ परिणाम उस ११दिवसीय युद्ध में भारत की विजय के साथ देखने को मिला। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण.........

अनसुलझा रहस्य

इस बीच स्थितियों ने अचानक नाटकीय मोड़ लिया। दुनिया में किसी भी युद्ध के इतिहास में ऐसे क्षण नहीं आए होंगे कि हमले की निश्चित संभावनाएँ अचानक उलट गई हों और बढ़े हुए कदम वापस ले लिए गए हों। सातवें बेड़े के आज-कल और कुछ घंटों बाद ही सक्रिय हस्तक्षेप के समाचार आना थम गए और अगले दिन अचानक पता चला कि सातवें बेड़े ने अपनी दिशा बदल दी है। वह वापस जा रहा है। संभवतः वह गीता जयंती के आस-पास के दिन थे।

अमेरिकी राष्ट्रपति ने बेड़े को वापस रुख करने का आदेश किन परिस्थितियों में दिया, यह आज भी रहस्य बना हुआ है। चालीस साल बाद किसी भी स्तर पर किए गए फैसलों को सार्वजनिक कर देने वाले देश के इस निर्णय का रहस्य अभी तक उजागर नहीं हुआ है। उन दिनों समाचार माध्यम आज की तरह तेज और सक्षम नहीं थे। सामरिक घटनाओं की जानकारी का स्रोत सरकारी विज्ञप्तियाँ या सैनिक घोषणाएँ ही होती थीं। बेड़े की वापसी की खबर आने में समय लगा और उसका कारण तो अभी तक अज्ञात ही है।

उन स्थितियों में कुछ साधकों ने विचित्र अनुभव किए। अखबारों में तब युद्ध की गतिविधियों के समाचार आ रहे थे। सातवें बेड़े के कूच करने के साथ उसकी क्षमता और हस्तक्षेप के बाद युद्ध के परिणामों की कयासबाजियाँ भी छप रही थीं। उन दिनों राजनांदगांव मध्यप्रदेश के एक साधक ललित कुमार साहू ने प्रातःकालीन संध्या के समय ध्यान में एक अद्भुत दृश्य देखा। यह दृश्य उन्हें बाद में स्वप्न में भी दिखाई दिया। दृश्य में एक विराट जहाज और उसके आस-पास सैकड़ों नौकाएँ तैरती दिखाई दे रही हैं। जहाज पर विमानभेदी तोपें और युद्धक विमान भी लदे हुए हैं। यह बेड़ा तेज गति से भारतीय तट की ओर बढ़ रहा है।

स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि बेड़ा रामेश्वरम् की सीध में आ गया है। अचानक समुद्र की छाती को चीरता हुआ एक विशाल हाथ निकलता है। उस हाथ की मुट्ठी तनी हुई है। लहरों से उभरकर हाथ आकाश की ऊँचाई तक उठता है और पंजा खुलने लगता है। वह पंजा जहाजी बेड़े को आवृत करने लगता है। बेड़े पर छा जाता है और उसे तोड़ता-मरोड़ता हुआ वापस समुद्र के गर्भ में समा जाता है। रामेश्वर के सामने जहाँ बेड़ा धड़धड़ाता हुआ आगे बढ़ रहा था, वहाँ अब उसके अवशेष बचे हुए हैं। इस अनुभूति के साथ ध्यान पूरा होता है। रात स्वप्न में भी यही दृश्य दिखाई देता है और नींद खुलती है तो अपूर्व शांति की अनुभूति होती है। पूरे दिन शांति प्रतीत होती

रही। इच्छा उमगी कि इस हाथ के बारे में औरों को बताया जाए। लेकिन कौन विश्वास करेगा, यह सोचकर अपने आप को रोक लिया। फिर विचार आया कि कम-से-कम माताजी को तो बताया ही जाए। दोपहर के समय उसने कलम उठाई और अपने अनुभव का विवरण लिखकर माताजी को भेज दिया। दो या तीन दिन बाद ही रेडियो पर समाचार सुना कि सातवाँ बेड़ा बंगाल की खाड़ी में प्रवेश से पहले ही वापस मुड़ गया है।

बेड़े की वापसी के तीन-चार दिन बाद ही ढाका में भारतीय सेनाओं के विजयी होने का समाचार आया। इसके बाद की राजनीतिक और कूटनीतिक घटनाओं का एक लंबा सिलसिला है। शेख मुजीब की रिहाई, उनकी ताजपोशी, शरणार्थियों की समस्या हल होने और युद्धबंदियों के वापस जाने के ढेरों विवरण हैं। उनके विस्तार में जाना आवश्यक नहीं है।

महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि पूरा देश जब विजय की खुशियाँ मना रहा था तो गायत्री परिवार के साधकों ने शांति के लिए अनुष्ठान शुरू कर दिए थे। इन कार्यक्रमों में उन सैनिकों को सम्मिलित किया गया, जिन्होंने युद्ध में भाग लिया था। वीरगति को प्राप्त हुए सैनिकों और नागरिकों के कल्याण की भावना और उनके परिजनों को सम्मानित करते हुए इन आयोजनों में स्थानीय लोग भी भाग लेते। ऐसे अवसरों पर युद्ध की घटनाएँ, आपबीती और आध्यात्मिक अनुभवों की चर्चा भी होती। इन चर्चाओं में प्राय: एक ही निष्कर्ष निकलकर आता कि युद्ध जमीनी मोर्चे पर ही नहीं लड़ा गया है, सूक्ष्मजगत में भी इसका संचालन और नियंत्रण होता रहा है। यह भी कि प्रकट तौर पर यह युद्ध भले ही बाँग्लादेश के अलग होने के रूप में दिखाई देता हो, लेकिन आगे चलकर यह १९४७ की भूल सुधारने के रूप में दिखाई देगा। आजादी के समय विभाजित हुआ भारत देश वापस एक होगा। भले ही चालीस-पचास या सौ-सवा सौ साल लगें, लेकिन भारतीय उपमहाद्वीप के एकसूत्र में बँधने के रूप में उसकी नियति चरितार्थ होगी। इन चर्चाओं के साथ गुरुदेव के दिए गए संदेशों और आश्वासनों की भी स्वाभाविक ही चर्चा होती थी।

पंचाक्षरी मंत्र और नाम

दिसंबर १९७१ बीतने तक क्षेत्र में गायत्री महायज्ञों और सम्मेलनों का वेग थमने लगा था। वसंत पंचमी करीब आ रही थी। साधक उसकी तैयारी में जुट रहे थे। यह पहली वसंत पंचमी थी, जिसमें गुरुदेव से संपर्क नहीं हो सकता था। कम-से-कम उस तरह तो कतई नहीं, जैसा कि पिछले वसंत उत्सवों पर होता रहा है। यद्यपि सभी साधक वसंत पंचमी पर उनके साथ नहीं होते थे, फिर भी उनका संदेश पत्र और कुछ नहीं तो गुरुदेव के मथुरा में उनके रहने का बोध भी प्रत्यक्ष संपर्क का आभास दे जाता था। इस बार ऐसी कोई संभावना नहीं थी। साधकों ने उनके सान्निध्य या अनुग्रह के लिए स्थानीय आयोजनों को ही कुशलता से मनाने की कसौटी मान ली थी। जो जहाँ जितना कुशल और कर्मठ होगा, उसे वहीं गुरुदेव का स्नेह, अनुग्रह मिलेगा।

शांतिकुंज और गायत्री तपोभूमि में भी वसंत पर्व पर कोई बड़ा आयोजन करने के बजाय नई गतिविधियों के सूत्रपात पर जोर था। शांतिकुंज में जप करने वाली कन्याओं की संख्या अब लगभग बारह हो गई थी। वे बारी से जप के लिए बैठतीं। सुबह डेढ़ घंटा और रात में एक घंटा। प्रत्येक कन्या को इस तरह प्रतिदिन ढाई घंटा जप करना होता था। बाकी समय वे पढ़ने-लिखने में बितातीं। पढ़ाने का दायित्व स्वयं माताजी सँभाल रहीं थीं। कन्याएँ स्कूली पाठ्यक्रम के अलावा संगीत और सिलाई भी सीखतीं। वसंत पर्व आने तक उनकी शिक्षा-दीक्षा को व्यवस्थित रूप देना निश्चित किया गया। इसके लिए विद्यालय बनाने की बात सोची गई। ऐसी व्यवस्थाएँ बनाई जाने लगीं कि दो-तीन महीनों में शिक्षण का काम शुरू हो जाए, बहुत हुआ तो मई-जून तक।

भोजनालय की व्यवस्था माताजी और देव कन्याएँ मिलकर सँभालती थीं। हाथ बँटाने के लिए दो सेविकाएँ रखी गईं थीं। माताजी का मानना था कि उन पर सारा बोझ नहीं डाल देना चाहिए। इधर इन कन्याओं में से मई-जून तक कुछ को वापस भी जाना था। वे छह महीने के लिए ही शांतिकुंज आई थीं। माताजी के सान्निध्य में रहकर जप, अनुष्ठान, साधना और संजीवनी विद्या का आकर्षण कन्याओं और उनके अभिभावकों को भी प्रेरित कर रहा था। कई अभिभावकों के आवेदन आए हुए थे। उनके बारे में विचार करते हुए माताजी ने कहा कि चौबीस महापुरश्चरण छह साल में पूरे होने हैं। साल भर तो हुआ जा रहा था, अब पाँच वर्ष का समय और शेष है। अच्छा हो कि जो भी कन्याएँ आएँ वे कम-से-कम पाँच वर्ष तो यहाँ रहें। इस अवधि में व्यक्तिगत रूप से वे स्वयं भी कम-से-कम तीन महापुरश्चरण कर लेंगी। इतने समय

यहाँ रहने पर वे अपनी योग्यताओं का विकास भी कर सकेंगी। साल-छह महीने में जीवन की दिशाधारा तो तय की जा सकती है, तकनीकी ज्ञान या कला भी सीखी जा सकती है, लेकिन व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं हो सकता।

देवकन्याओं के तौर पर आना चाह रही लड़कियों और उनके अभिभावकों को यह बात बता दी गई। भोजनालय की व्यवस्था के सहयोग के लिए सेविका की बात, 'अखण्ड ज्योति' में छपी। उससे पहले ही छत्तीसगढ़ क्षेत्र की दो महिलाएँ शांतिकुंज आईं। दरअसल वे क्षेत्र के किसी कार्यकर्त्ता के साथ माताजी से मिलने आईं थीं। माताजी ने उन कार्यकर्त्ता को भोजनालय की आवश्यकता के बारे में बताया कि दो महिलाएँ चाहिए। सेवाभावी हों और आश्रम के अनुशासन-नियमों को भी लगन से निभा सकें। इस चर्चा के बीच में ही उन महिलाओं ने कहा कि हम यह काम करेंगी। अचानक ही कहा था इसलिए पहली बार में ध्यान नहीं गया। लेकिन वे बार-बार कहने लगीं। अपनी बात में वजन पैदा करने के लिए उन्होंने यह भी कहा कि हम पढ़ी-लिखी नहीं हैं, इसलिए आप हमें सेवा का मौका नहीं दे रहीं। हम लोग तो सोचकर ही आईं थीं कि पहले किसी भी तरह की सेवा का मौका मिल जाए तो बाकी जीवन आपके चरणों में ही काट दें।

पढ़ा-लिखा नहीं होने की बात जिस कातर भाव से कही थी, उससे माताजी को तरस आया। उन्होंने कहा कि सेवा के किसी भी क्षेत्र में शिक्षा से ज्यादा लगन और निष्ठा जरूरी है बेटी! तुम लोग दो सप्ताह यहाँ रुको। काम करना अच्छा लगे, तुम्हारा मन लग जाए तो आगे के बारे में सोचेंगे।

उन्हें साथ लेकर आए कार्यकर्त्ता ने ही बताया कि इन महिलाओं ने गुरुदेव से गायत्री मंत्र की दीक्षा ली थी। उन्होंने दीक्षा के समय कहा था कि पूरे गायत्री मंत्र का उच्चारण करना हमारे लिए संभव नहीं होगा। तब गुरुदेव ने कहा था पंचाक्षरी (ॐ भूर्भुवः स्वः) का जप कर लेना। उससे भी जप की आवश्यकता पूरी हो जाएगी। उन महिलाओं से पंचाक्षरी का उच्चारण भी नहीं हो पाया था, तब गुरुदेव ने राम-नाम की तरह गायत्री जपने के लिए कह दिया था। यह शर्त भी जोड़ दी थी कि जप के साथ विद्या का अभ्यास भी करते चलना है। घर में या आस-पास कोई व्यक्ति पढ़ा-लिखा हो तो उससे अक्षर ज्ञान सीखकर पढ़ने की आदत डालनी है। गायत्री मंत्र का संपूर्ण जप किया जाए, तभी उद्धार होता है। पंचाक्षरी और गायत्री नाम का जप तो ग्लूकोज और विटामिन की तरह है।

कार्यकर्त्ता मनोहारी ढंग से बता रहे थे। ग्लूकोज और विटामिन की बात सुनकर माताजी को हँसी आ गई। उन्हीं कार्यकर्त्ता ने बताया कि गुरुदेव के निर्देश को गाँठ बाँधकर इन महिलाओं ने शाम के वक्त चलने वाली प्रौढ़ पाठशाला में जाना शुरू किया। प्रौढ़ पाठशाला गायत्री परिवार के स्थानीय कार्यकर्त्ता ही चलाते थे। उसमें चार- पाँच लोगों से ज्यादा कभी नहीं आए, लेकिन जो आए वे रामचरितमानस का पाठ करना तो सीख ही गए। इन महिलाओं ने भी गायत्री मंत्र का उच्चारण करने और मानस पढ़ने जितना अभ्यास कर लिया था। यह विवरण जानकर उन महिलाओं को आश्रम में रख लिया गया। (क्रमशः)

राजा जीमकेतु को अपनी अपार संपत्ति का अहंकार हो गया। उनके अहंकार को तोड़ने ऋषि दत्तात्रेय एक पागल का वेश बनाकर उनके महल पहुँचे और उनके सिंहासन पर बैठ गए। राजा ने क्रोध में उनसे कहा—"मेरे महल से निकल जाओ।" दत्तात्रेय बोले—"राजन्! क्या तुम इस महल में हजारों वर्षों से रहते हो?" राजा बोले—"नहीं, मैं विगत बीस वर्षों से यहाँ का राजा हूँ।" दत्तात्रेय ने पूछा—"तुमसे पहले यहाँ कौन रहता था?" राजा ने उत्तर दिया—"मुझ से पहले मेरे पिता यहाँ के राजा थे।" दत्तात्रेय ने पुनः पूछा—"और उनसे पहले?" राजा बोले—"तब मेरे दादा-परदादा यहाँ के राजा थे।" दत्तात्रेय बोले—"राजन्! जहाँ कोई कुछ समय आकर चला जाता है, उस जागीर को अपना समझ लेना मूर्खता ही कहलाएगी।" यह सुनते ही राजा का अहंकार समाप्त हो गया।

जीवन को होश में कैसे जिएँ

इस सृष्टि में कालचक्र निरंतर अपनी गति से चल रहा है। कोई भी उसकी गति में बाधा नहीं डाल सकता। कालचक्र की गति स्वचालित है। ऋग्वेद में एक विशेष उद्घोष आता है कि काल बिना वायु के ही श्वास ले रहा है—**आनीदवातं स्वधया तदेकम्**। वास्तव में हमारा होना, हमारा अस्तित्व में आना, हमारे हाथ में है ही नहीं, यह हमारी सीमा से बाहर की बात है। हम चाहें तो भी, इस होने या न होने के चक्र में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकते, इसमें किसी तरह की कोई बाधा नहीं डाल सकते। यही ऋत है, यही प्रकृति है, इसी में सत् और असत् की सत्ता है। **संभवामि युगे-युगे** (युग-युग में प्रकट होना) प्रकृति का संविधान है।

इस सृष्टि में प्राण ही अमर है, शरीर तो मरणधर्मा है। प्रकृति ने इस संसार के प्रवाह को निरंतर चलाए रखने के लिए संतानोत्पत्ति का क्रम चलाया है। अपनी संतानों के जरिये मनुष्य एक तरह से नया शरीर पाता है। अक्सर वैसा ही चेहरा, हाव-भाव और स्वभाव भी पाता है। अमरत्व की यह प्रक्रिया सतत प्रवहमान् है और काल इस प्रक्रिया को गति देता है। इस तरह मनुष्य मर कर भी इस संतति-प्रवाह में अमर रहता है।

अमरत्व हमारी जिजीविषा है और सृजन इस अमर तत्त्व की कुंजी है। परमात्मा भी इसीलिए अमर है; क्योंकि वह बिना रुके, बिना थके निरंतर कुछ-न-कुछ सृजन कर रहा है। विश्वकवि रवींद्रनाथ टैगोर का कहना था कि जब भी मुझे किसी बच्चे के जन्म की सूचना मिलती है, मैं आशावाद से भर जाता हूँ और वहाँ पर परमात्मा के सृजन को प्रत्यक्ष देखता हूँ।

जीवन और मृत्यु दरअसल ऊर्जा रूपांतरण के खेल हैं। प्रत्येक प्राणी के भीतर जीवन की एक सघन चेतना है और काल इस चेतना का वाहक है। शरीर इसी जीवनचेतना का रूप-आकार है। शरीर एक नगर या पुर है। इसी पुर के भीतर चेतना का निवास है। चेतना की सघनता जीवन है, चेतना की जीर्णता बुढ़ापा है और चेतना की शून्यता मृत्यु है।

संसार में प्रतिपल जीवन और मृत्यु के खेल चलते हैं। जीवों के शरीर में नित्य नई कोशिकाएँ बनती हैं और पुरानी नष्ट होती हैं। इस तरह हमारे भीतर जीवन के साथ मृत्यु की भी उपस्थिति है। कितना जीवन है और कितनी मृत्यु—इसका पता लगाना आसान नहीं है। लेकिन ऐसा अनुमान है कि ७०-८० या १०० वर्ष की आयु में लोगों ने अपना जीवन खोया है, इसीलिए वैदिक पूर्वजों ने 'काम करते हुए १०० वर्ष के जीवन' की प्रार्थनाएँ की हैं। यहाँ 'काम करते हुए' पद महत्त्वपूर्ण है, ध्यान देने योग्य है।

यों ही थके-माँदे जीवन जीने का कोई मतलब नहीं है। इसके लिए आँख, कान, हाथ, पैर सहित शरीर के सभी अंगों का बुढ़ापे में भी पुष्ट होना जरूरी है। इसीलिए वैदिक साहित्य में इन अंगों के पुष्ट रखने की ढेर सारी प्रार्थनाएँ हैं। लेकिन काल अपना कार्य निरंतर करता रहता है। वह विश्राम नहीं करता, इसलिए प्रत्येक शरीर बूढ़ा होता है। अंग-अवयव परिपक्व होते हैं, जीर्ण होते हैं और पेड़ से पत्ते के टूटने के सदृश एक दिन लुढ़क जाते हैं यानी मृत हो जाते हैं। काल की इस गतिविधि को टाला नहीं जा सकता।

इसलिए इस सृष्टि में काल ही सबसे बलवान है, काल से बड़ा कोई नहीं। यमराज भी उसके कहे अनुसार चलते हैं। उगना, खिलना, पकना, झड़ जाना काल के खेल हैं। ऐसी प्राचीन मान्यता है कि स्वर्ग में न बुढ़ापा है और न ही मृत्यु। कठोपनिषद् के अनुसार—स्वर्गप्राप्ति का साधन अग्नि विद्या है। इसीलिए नचिकेता ने यमराज से 'अग्नि रहस्य' पूछा था।

हम सभी की यह जिज्ञासा रहती है कि मरने के बाद हमारा क्या होता है? जीवन का दिया बुझने के बाद यह ज्योतिर्मय तत्त्व आखिरकार कहाँ चला जाता है? यह बात यमराज से बेहतर भला कौन जानता होगा? इसलिए नचिकेता ने यमराज से यह प्रश्न पूछा कि मृत्यु के बाद इस आत्मा का क्या होता है? कठोपनिषद् के अनुसार, यमराज ने नचिकेता को कई तरह के प्रलोभन

दिए और इस प्रश्न का उत्तर देने में टाल-मटोल की, लेकिन नचिकेता अड़ गए। फिर यमराज ने उन्हें जीवन का मर्म समझाया और बताया कि यह आत्मतत्त्व गूढ़ चिंतन से ज्ञात नहीं होता; क्योंकि यह अणु से भी सूक्ष्म है। इसके आगे उन्होंने कहा कि यह आत्मा न तो जन्म लेती है और न मरती है, न इससे कोई प्रकट हुआ है और न ही इसे किसी ने प्रकट किया है। शरीर के नष्ट होने पर भी इसका विनाश नहीं होता। शरीर विनाशी है, लेकिन यह आत्मतत्त्व अविनाशी है।

भारतीय दर्शन के अनुसार—यह आत्मतत्त्व अजर-अमर है और शरीर, जीवन का मुख्य उपकरण है। शरीर में स्थित इंद्रियाँ ही हमारे और इस संसार के बीच सेतु हैं। इंद्रियबोध का विस्तार ही हम सबका संसार है और यह संसार—काल और दिक् के भीतर है। इसलिए इन सबके मूल में काल है। अथर्ववेद में महर्षि भृगु ने बताया है कि काल में सब समाहित हैं। काल में प्राण हैं, जीवन है। काल में गति है, प्रगति है, दुर्गति व सद्गति है। काल ही हमारा वास्तविक पिता है, माता है और वही पुत्र भी है। वह काल सर्वत्र व्याप्त है, भीतर-बाहर है, ऊपर और नीचे है। काल अखंड सत्ता है। हम सब काल की मुट्ठी में हैं। इसलिए काल ही रस, गंध, श्रुति, स्मृति और अनुभूति का संसार है और अंततः वही मृत्यु भी है। इसलिए सृष्टि के प्रत्येक प्राणी की मृत्यु सुनिश्चित है।

सृष्टि के प्रत्येक प्राणी की मृत्यु अटल है, सुनिश्चित है, यह जानते हुए भी व्यक्ति मृत्यु की तैयारी नहीं करता। सामान्यतः व्यक्ति जीवन के सभी कार्यों की योजना बनाते हैं, लेकिन काल की योजना के अनुसार मृत्यु की तैयारी नहीं करते। जीवन में कई तरह के दुःख हैं, तमाम तरह की कठिनाइयाँ हैं, तो भी मन करता है कि अभी और जिएँ। जीने की यही इच्छा भय बनती है, डर पैदा करती है। लोग सुरक्षा-व्यवस्था करते हैं, ईश्वर आस्था में रमते हैं, लेकिन मृत्यु को सहज रूप में स्वीकारने से हिचकिचाते हैं। जीवन तो जीते हैं, लेकिन मृत्यु को भूल जाते हैं, मृत्यु के बारे में नहीं सोचते। अपना पूरा जीवन गुजार देते हैं, सतत मृत्यु की ओर बढ़ते हैं, लेकिन उसे ही बिसरा देते हैं। लोग मृत्यु को भले ही भूल जाएँ, लेकिन मृत्यु कभी किसी को नहीं भूलती, नियत समय पर स्वतः ही उपस्थित हो जाती है, फिर इसकी उपस्थिति का निमित्त कुछ भी हो सकता है।

जीवन और मृत्यु को सार्थकता प्रदान करने के लिए युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने जन्म व मृत्यु की उपासना विधि बताई और इसके लिए आत्मबोध व तत्त्वबोध की साधना बताई है। आत्मबोध—यानी प्रातःकाल जगते ही एक नए जन्म की अनुभूति, ईश्वर के प्रति कृतज्ञता का भाव और एक शुभ संकल्प के साथ जीवन जीने का भाव। तत्त्वबोध—यानी एक दिन के जीवन का विसर्जन, मृत्यु की शरण, उसके प्रति समर्पण, इससे पूर्व दिन भर में किए गए कार्यों व कर्मों की उचित समीक्षा व सार-निष्कर्ष। इस तरह जन्म व मृत्यु की यह उपासना वास्तव में काल की ही उपासना है और जीवन को होश में जीने की साधना है। ❑

एक बार तीर्थयात्रा पर जाने वाले यात्रियों ने संत तुकाराम से उनके साथ चलने की प्रार्थना की। तुकाराम जी बोले—"मेरे लिए साथ चल पाना संभव नहीं है, पर मेरे पास एक यह कद्दू रखा है, आप इसे साथ ले जाएँ और जहाँ-जहाँ तीर्थस्नान करें, वहाँ इसे मेरा प्रतिनिधि मानकर स्नान कराएँ।" तीर्थयात्रियों ने ऐसा ही किया। लौटने पर उन्होंने वह कद्दू संत तुकाराम जी को वापस कर दिया। संत तुकाराम जी ने वह कद्दू कटवाया और उसकी सब्जी बनाकर सबको थोड़ी-थोड़ी परोसवाई। उन्होंने सब्जी ग्रहण की तो बोले—"यह सब्जी तो कड़ुई है।" तुकाराम जी बोले—"भाइयो! यह सब्जी उसी कड़ुए कद्दू की बनी है, जो तीर्थयात्रा करके आया है। जैसे तीर्थयात्रा इस कद्दू को मीठा ना कर सकी, वैसे ही जब तक मन मैला रहता है, तब तक तीर्थयात्रा भी कोई प्रभाव नहीं दिखा पाती।" यात्रियों को उनके कहे का भाव समझ में आ गया।

शैक्षिक परिवेश में मानवीय मूल्य

वर्तमान समय में मूल्यों का संकट बड़ी चिंता का विषय है। निरंतर मानव मूल्यों एवं सामाजिक दायित्वों का बोध कम होता जा रहा है। अनियंत्रित व्यवहार और अनुशासनहीनता—वर्तमान की मूल्यहीनता की स्थिति को प्रकट करते हैं। इस मूल्यहीनता का सीधा संबंध हमारी शिक्षा-व्यवस्था से है। आज के शैक्षिक परिवेश में मानवीय मूल्यों का पतन गंभीर चिंता का विषय है। पढ़ी-लिखी युवा पीढ़ी भी स्वार्थ एवं विघटनकारी प्रवृत्तियों में डूबती जा रही है।

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति का सर्वतोमुखी विकास है, परंतु वर्तमान शिक्षापद्धति मुख्य रूप से मानसिक विकास तक ही सीमित है। मूल्य शिक्षण के लिए उसके पास कोई आधारभूत ढाँचा नहीं है। वर्तमान की शिक्षा-व्यवस्था में व्यक्ति के आंतरिक विकास की उपेक्षा हो रही है, जिसके परिणामस्वरूप निरंतर मानवीय मूल्यों का पतन हो रहा है और अराजकता, भ्रष्टाचार, चरित्रहीनता और हिंसा में बढ़ोत्तरी हो रही है। युवा पीढ़ी में संस्कारहीन शिक्षा के कारण अपराध-प्रवृत्ति बढ़ रही है। ऐसे में मूल्य शिक्षा को लेकर वर्तमान शिक्षापद्धति का मूल्यांकन एवं समाधान के उपाय खोजना नितांत आवश्यक हो गया है।

इस दिशा में पहल करते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय में एक महत्त्वपूर्ण शोधकार्य संपन्न किया गया है। यह शोधकार्य वर्ष २०१३ में विश्वविद्यालय के शिक्षाशास्त्र विभाग के अंतर्गत शोधार्थी अतुल कुमार मिश्र द्वारा कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या के विशेष संरक्षण एवं डॉ० आर० पी० कर्मयोगी के निर्देशन में संपन्न किया गया। इस शोध-अध्ययन का विषय था—**वर्तमान शैक्षिक परिवेश में मानव मूल्यों की प्रासंगिकता—एक अध्ययन**।

यह शोध-अध्ययन विद्यार्थियों में मानवीय मूल्यों के पोषण एवं शिक्षा में गुणवत्ता उत्पन्न करने की आवश्यकता पर केंद्रित है। इसके साथ ही इस अध्ययन में वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था की समीक्षा एवं मूल्यांकन करते हुए इसके विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास में पर्याप्त भूमिका नहीं निभा पाने की कमजोरी को भी उजागर किया गया है तथा समुचित निदान एवं उपचार हेतु उपाय सुझाए गए हैं, ताकि निरंतर हो रहे मूल्य ह्रास एवं नैतिक पतन से युवा पीढ़ी को उबारा जा सके। शोधार्थी की मान्यता है कि हमारे प्राचीन मूल्य विघटित हो चुके हैं, किंतु नए जीवनमूल्य अभी स्थापित नहीं हो पाए हैं। अतः सदाचरण, सत्य, अहिंसा, प्रेम, शांति जैसे शाश्वत एवं परंपरागत मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा की महती आवश्यकता है। ये मूल्य न केवल व्यक्तिगत उत्कर्ष के लिए, अपितु समाज एवं राष्ट्र की प्रगति, उत्थान व शांति के लिए भी परम आवश्यक हैं।

मूल्य संकट एवं इसके समाधान में वर्तमान शिक्षा की भूमिका का मूल्यांकन करने के लिए शोधार्थी ने अपने इस शोध-अध्ययन में प्रयोगात्मक विधि का प्रयोग किया है। इस प्रयोगात्मक विधि के अंतर्गत शोधार्थी द्वारा परची विधि से शाहजहाँपुर जिले के १५ विद्यालयों का चयन किया गया एवं कोटा प्रतिचयन विधि द्वारा इन विद्यालयों से १०वीं व १२वीं कक्षा के ६६० विद्यार्थियों का चयन किया गया। इन विद्यार्थियों में ४८० ग्रामीण क्षेत्र के एवं १८० शहरी क्षेत्र के थे, साथ ही इनका एकल एवं संयुक्त परिवार तथा आर्थिक स्तर पर भी वर्गीकरण किया गया था।

शोध-अध्ययन में प्रयोग परीक्षण हेतु उपकरण के रूप में शोधार्थी द्वारा स्वनिर्मित मानवीय मूल्य परीक्षण प्रश्नावली का प्रयोग किया गया। परीक्षण हेतु जिन मूल्यों को सम्मिलित किया गया, वे थे—(१) सत्यवादिता, (२) रचनात्मकता, (३) त्याग, (४) समझदारी, (५) आत्मनियंत्रण, (६) परोपकार और (७) वैज्ञानिक दृष्टि। इन मूल्यों के आधार पर शोध उपकरण के माध्यम से आँकड़ों का संकलन किया गया। परीक्षण में प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर शोधार्थी ने शोध परिणाम के रूप में यह पाया कि शहरी एकल परिवार के निम्न आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों की तुलना

में शहरी संयुक्त परिवार के उच्च आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों में मानवीय मूल्यों का स्तर उच्च है। इसी प्रकार शोध में किए गए अन्य वर्गीकरण के आधार पर भी विद्यार्थियों के मानवीय मूल्यस्तर में अंतर पाया गया।

शोध परिणामों के आधार पर निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि विद्यार्थियों के मूल्यों पर शहरीकरण का प्रभाव अच्छा रहता है। आस-पास का वातावरण (शहरी व ग्रामीण) मूल्यों के प्रति संवेदनशील बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शहर का विद्यार्थी मानवीय मूल्यों के प्रति अधिक जागरूकता रखता है। अतः ग्रामीण अंचलों में जागरूकता लाने की जरूरत है। इस दिशा में समाज की शिक्षण संस्थाओं को पहल करने की आवश्यकता है। इसी प्रकार शोध निष्कर्ष में यह भी पाया गया कि संयुक्त परिवार एवं उच्च आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों में एकल परिवार एवं निम्न आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की तुलना में मानवीय मूल्यों के प्रति सजगता ज्यादा है। अतः संयुक्त परिवारों को बढ़ावा देने व आर्थिक स्थिति सुदृढ़ बनाने की प्रेरणा देने जैसे महत्त्वपूर्ण कदम भी मानवीय मूल्यों के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

आज विकास एवं भौतिकवाद के युग में एकल परिवारों की स्थिति बढ़ी है और संयुक्त परिवारों की संख्या कम हुई है, जिसका सीधा प्रभाव पारिवारिक, सामाजिक व मानवीय मूल्यों के पतन के रूप में सामने आया है। शोध के निष्कर्ष बताते हैं कि मानवीय मूल्यों से ओत-प्रोत एवं चरित्रवान युवा पीढ़ी के निर्माण हेतु श्रेष्ठ वातावरण, संयुक्त परिवार व सुदृढ़ आर्थिक स्थिति का होना आवश्यक है। अतः इस दिशा में जागरूकता लाने व गिरते मानवीय मूल्यों के स्तर को ऊँचा उठाने में हमारी शिक्षण संस्थाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। शोधार्थी का मत है कि मूल्य आधारित शिक्षा की व्यवस्था करना शिक्षण संस्थाओं का कर्त्तव्य है।

प्रत्येक समाज एवं राष्ट्र का भविष्य उसकी युवा पीढ़ी पर निर्भर करता है। प्रसन्न, खुशहाल एवं शांतिमय समाज के लिए आवश्यक है कि युवा पीढ़ी नैतिक मूल्यों से परिपूर्ण हो एवं युवा, आदर्श नागरिक बनें। इसके लिए विद्यार्थियों में अच्छे संस्कारों का प्रादुर्भाव हो, पोषण हो; यह भूमिका परिवार के बाद शिक्षण संस्थाओं की हो जाती है।

इस तरह यह शोध-अध्ययन मानवीय मूल्यों के रूप में शिक्षण संस्थाओं की व्यक्ति, समाज व राष्ट्र निर्माण में भूमिका को सुनिश्चित करने वाला तथा विद्यार्थी जीवन में मूल्य निर्माण के लिए आवश्यक पहलुओं पर प्रकाश डालने वाला व मानवीय मूल्यों के विकास की उत्कट प्रेरणा उत्पन्न करने वाला है। साथ ही यह शोधकार्य वर्तमान के मूल्य संकट को रेखांकित करते हुए समाधान के समर्थ उपाय भी प्रस्तुत करता है एवं भारतीय संस्कृति के शाश्वत जीवनमूल्यों की आधुनिक युग में प्रासंगिकता को स्पष्ट करते हुए शिक्षा जगत को मूल्य शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ने का ठोस आधार प्रदान करता है। ❑

साबरमती आश्रम में एक बार चोरों ने सेंध लगाई और कस्तूरबा जी के कपड़ों से भरे संदूक को ले गए। जब गांधी जी को यह पता चला तो उन्होंने उलटा प्रश्न किया— ''बा के पास संदूक भर कपड़े कैसे थे ?'' इस पर बा ने कहा— ''मेरी पोतियाँ जब मेरे पास आएँगी तो मुझे उन्हें साड़ी देकर विदा करना पड़ेगा। इसलिए भेंट में मिली साड़ियाँ मैंने संदूक में रख छोड़ी थीं।'' गांधी जी बोले— ''अपरिग्रह के सिद्धांत को अपनाने के बाद हमें इस तरह संग्रह नहीं करना चाहिए। सिर्फ आवश्यकता की वस्तुएँ ही रखनी चाहिए और शेष सभी आश्रम कार्यालय में जमा कर देनी चाहिए।'' गांधी जी ने पुनः बा से कहा— ''लड़कियाँ आएँ, खाएँ-पीएँ-रहें, लेकिन जिन्होंने गरीबी का जीवन बिताने का व्रत लिया है, उन्हें इस तरह भेंट देना उचित नहीं।'' इसके बाद बा ने कभी कपड़ों का संग्रह नहीं किया।

▶युवाक्रांति वर्ष◀

एकाग्र रहें, स्मरणशक्ति बढ़ाएँ

स्मरणशक्ति मानवीय मस्तिष्क की एक ऐसी अद्भुत क्षमता है, जिसके आधार पर व्यक्ति सीखता है, अनुभव प्राप्त करता है और अपने जीवन विकास के लिए प्रयास करता है। यह सच है कि मनुष्य की स्मरण शक्ति की एक सीमा है। वह अपने वर्तमान जन्म की बातें ही याद रख पाता है, विगत जन्मों को स्मरण नहीं कर पाता। लेकिन कुछ ऐसे उदाहरण यदा-कदा सामने आ जाते हैं, जो यह दरसाते हैं कि व्यक्ति को अपने पूर्वजन्म की बातें भी याद रहती हैं, वह उनका भी स्मरण कर पाता है। लेकिन प्रायः व्यक्ति इसी जन्म की बातों व घटनाओं का कम या ज्यादा मात्रा में स्मरण कर पाते हैं, पूर्वजन्म की बातें तो प्रायः भूली-बिसरी ही रहती हैं।

स्मरणशक्ति के मामले में किसी-किसी व्यक्ति की स्मरणशक्ति बहुत तीक्ष्ण होती है। वे घटनाओं को हू-बहू दोहरा लेते हैं, याद कर लेते हैं। लेकिन किसी-किसी व्यक्ति की स्मरणशक्ति कमजोर होती है, वे घटनाओं को ठीक से याद नहीं कर पाते और जल्दी भूल जाते हैं। याद करने के मामले में किसी को घटनाएँ अच्छे से याद रहती हैं तो किसी को तथ्य याद रहते हैं तो किसी को आँकड़े अच्छे से याद रहते हैं। किसी की स्मरणशक्ति किसी क्षेत्र विशेष में प्रगाढ़ होती है तो किसी की स्मृति सामान्य विषयों में प्रगाढ़ होती है।

हम जो जीवन जी रहे हैं, जो हमारे रिश्ते-नाते हैं, वो सब स्मरणशक्ति के कारण ही हैं। यदि हमारी स्मरणशक्ति किसी कारणवश चली जाए तो हम किसी को पहचान नहीं पाएँगे, न स्वयं को और न दूसरों को, फिर जीवन का कोई मतलब ही समझ नहीं आएगा कि हम क्या कर रहे हैं? किधर जा रहे हैं? किधर जाना है? क्या करना है? अतः स्मरणशक्ति होने पर ही हम अपने जीवन को संतुलित ढंग से जी पा रहे हैं, अपने रिश्तों को निभा पा रहे हैं, अपने कर्त्तव्यों का भली भाँति निर्वहन कर पा रहे हैं।

जीवन जीने के लिए सामान्य स्मृति एवं बुद्धि की जरूरत पड़ती है, लेकिन अध्ययन के लिए, शोध-अनुसंधान के लिए, महत्त्वपूर्ण कार्यों की पूर्ति के लिए विशेष स्मृति व तीक्ष्ण बुद्धि की जरूरत पड़ती है, जो जितना अधिक स्मृति का धनी होता है, वह उतनी ही सरलता से चीजों को समझ पाता है और अपने कार्य में आगे बढ़ पाता है।

सामान्यतौर पर ४० या ५० की उम्र पार करने के साथ-साथ स्मरण-क्षमता कम होती जाती है, लेकिन अनुभव अधिक होते हैं। एक बच्चे की जितनी स्मरण क्षमता होती है, एक वृद्ध व्यक्ति के पास उतनी नहीं होती। यही कारण है कि एक बच्चे के सीखने की क्षमता अन्य उम्र के लोगों से अधिक होती है। स्मृति कम होने पर हम याददाश्त बढ़ाने के तरह-तरह के उपाय करते हैं। स्मरणशक्ति हर कोई बढ़ाना चाहता है; क्योंकि आज की भाग-दौड़ से भरी जिंदगी में हर किसी को लगता है कि उसकी याददाश्त कमजोर पड़ती जा रही है, फिर चाहे वह विद्यार्थी हो या नौकरीपेशा व्यक्ति या फिर घर में रहने वाला व्यक्ति ही हो। याददाश्त में कमी के कारण हर किसी के कार्य प्रभावित होते हैं और लोग अपनी इस कमी को दूर करना चाहते हैं एवं अपनी स्मरणशक्ति को बेहतर बनाना चाहते हैं।

स्मरणशक्ति के कम होने के कई कारण हो सकते हैं, जैसे—पर्याप्त नींद न लेना, थकान, तनाव, मादक द्रव्यों का सेवन आदि। कार्य का बहुत दबाव होना भी हमारी स्मृति-क्षमता को प्रभावित करता है। इससे हम अपने कार्यों को पूरे मन से, प्रसन्नतापूर्वक नहीं कर पाते और उन कार्यों के दौरान महत्त्वपूर्ण बिंदुओं व तथ्यों को भूल जाते हैं। एक ही समय पर अलग-अलग तरीके के कार्य करना भी स्मरणशक्ति को कम करता है। शोध अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि मल्टी टास्किंग (कई कार्य एक साथ करना) व्यक्ति की एकाग्रता को भंग करने के साथ-साथ उसकी याददाश्त में भी कमी लाते हैं। इसके कारण हम अपने सब कार्यों पर पूरी तरह से फोकस नहीं कर पाते, जिससे हमें कई तरह की दिक्कतों का सामना करना पड़ता है।

स्मृति-क्षमता कमजोर होने का एक कारण—वातावरण में मौजूद अस्थिरता है, जिसके कारण स्मृति को पोषित करने वाले मानसिक तत्त्व (शांति, स्थिरता, एकाग्रता) व शरीर को पोषित करने वाले पोषक तत्त्व हमें अपने वातावरण से नहीं मिल पाते। प्राचीनकाल में याद करने, रटने की कोई प्रथा नहीं थी। केवल सुनकर ही ज्ञान का आदान-प्रदान हो जाता था। श्रुतियाँ जो अस्तित्व में आईं, वो गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान को शिष्य के द्वारा सम्यक श्रवण से उत्पन्न हुईं। लेकिन आज सुनना तो दूर की बात, कई बार रटने से भी तथ्य हमारी स्मृति में नहीं आते। तात्पर्य यह है कि आज स्मृति के लिए रटने की प्रक्रिया भी पूरी तरह से कारगर नहीं है। रटा हुआ भी सही वक्त पर याद नहीं आता और समझने का ज्यादा प्रयास नहीं किया जाता।

स्मृति-क्षमता बढ़ाने का एक कारगर तरीका है—एकाग्रता। किसी भी बात को याद करने के लिए विषय-वस्तु पर पूरी तरह से एकाग्र होने की जरूरत है। जब हम किसी जगह एकाग्र होते हैं, तो अपने ध्यान को भटकने नहीं देते और अच्छे से कार्य कर पाते हैं। एकाग्र होकर ध्यानपूर्वक किए गए कार्य अपना अच्छा परिणाम देते हैं और उन्हें करने में भी आनंद आता है।

जब हम अपनी रुचि का कोई कार्य करते हैं तो सहजता से हमारा ध्यान लग जाता है और हम एकाग्र हो जाते हैं, जैसे—जब हम कोई फिल्म देखते हैं या किसी रोचक कहानी की किताब पढ़ते हैं तो सहजता से हमारा ध्यान उसमें लग जाता है, हमारा मन उसमें रम जाता है, फिर समय का ध्यान नहीं रहता। इस दौरान घटनाक्रम से लेकर पात्रों के नाम और कहानी आदि सब कुछ हम सहजता से याद कर लेते हैं।

वास्तव में जब हम मन से किसी कार्य को करते हैं, फिल्म देखते हैं, उपन्यास पढ़ते हैं या अन्य किसी कार्य में रमे होते हैं तो हम उन्हें याद नहीं करते, बल्कि वे चीजें हमारे स्मृति-पटल से गुजर जाती हैं, हम उस वक्त सिर्फ उन्हें गहराई से देखते व समझते हैं और हमारे मन में उनका चित्रांकन हो जाता है। यह चित्रांकन इतना गहराई से होता है कि यदा-कदा वो बातें व दृश्य हमारे स्मृति-पटल पर आ जाते हैं और हम उनकी समीक्षा या चर्चा करते हैं।

जब हम अचानक किसी पूर्व घटना या किसी नाम को भूल जाते हैं और उसे जबरदस्ती याद करने की कोशिश करते हैं तो हमारे दिमाग पर दबाव पड़ता है। जब दिमाग पर किसी तरह का दबाव पड़ता है तो उस समय उस घटना या व्यक्ति का नाम याद नहीं आता, लेकिन जैसे ही हम उसे याद करना बंद कर देते हैं या दूसरे कार्यों में लग जाते हैं, तो वह घटना अचानक हमें याद आ जाती है; जबकि हम उसे याद नहीं कर रहे होते। कभी-कभी उससे संबंधित किसी घटना या संकेत से भी हम उसे सहजता से याद कर लेते हैं।

मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि मानसिक दबाव व नकारात्मक सोच हमारी स्मरणशक्ति को सबसे अधिक प्रभावित करते हैं, वहीं सकारात्मक नजरिया हमारी याददाश्त को बढ़ाने में मदद करता है। आज के समय में व्यक्ति के जीवन में मानसिक तनाव अधिक बढ़ गया है। ऐसी स्थिति में सकारात्मक दृष्टिकोण हमें स्थितियों से उबारता है और हमारी स्मृति को स्वस्थ रखने में मदद करता है।

इस तरह स्मरणशक्ति बढ़ाने के लिए मन का सकारात्मक होना, मन का शांत व एकाग्र होना जरूरी है। हमें अपनी एकाग्रता की प्रवृत्ति को विकसित करने की जरूरत है; क्योंकि हम जितना अधिक एकाग्रता से किसी कार्य को करेंगे, उतना ही उसे याद रख पाएँगे। इसके साथ ही अपने खाद्य पदार्थों में उन पोषक तत्त्वों व औषधियों के सेवन की भी जरूरत है जो हमारे स्नायुतंत्र को सुदृढ़ बनाने में मदद करें, क्योंकि स्नायुतंत्र का संबंध हमारे मस्तिष्क से होता है और मस्तिष्क का संबंध स्मृति से है। ❑

संन्यस्य सर्वकर्माणि भवबन्धविमुक्तये।
यत्यतां पण्डितैर्धीरैरात्माभ्यास उपस्थितैः॥

अर्थात आत्माभ्यास में तत्पर हुए धीर विद्वानों को संपूर्ण कर्मों को त्यागकर भव-बंधन की निवृत्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

▶युवाक्रांति वर्ष◀

चमत्कारी हैं व्रत-उपवास के प्रभाव

सदियों से हमारे देश भारत में व्रत-उपवास की परंपरा रही है। हमारे ऋषि-मुनियों व मनीषियों ने दिवस, वार, तिथि व पर्व-त्योहारों आदि को ध्यान में रखते हुए व्रत-उपवास की तिथियाँ निर्धारित कीं, ताकि लोग इन तिथियों में उपवास करके शरीर में विशेष ऊर्जा का संचय कर सकें और शरीर में पहुँचने वाले, निर्मित होने वाले विषैले तत्त्वों का शमन कर सकें तथा अपने शरीर को स्वस्थ बना सकें। व्रत-उपवास के अनेक लाभ हैं व इनके लौकिक व आध्यात्मिक प्रभाव भी हैं। यहाँ यह ध्यान देने की बात है, इन लाभों को प्राप्त करने के लिए उचित सहनशक्ति को विकसित करना भी आवश्यक होता है। अपने आध्यात्मिक प्रभावों के कारण ही व्रत-उपवास को तप-साधना का एक अभिन्न अंग माना जाता है।

वैसे तो बहुत सारे व्रत व उपवास हैं, जो लौकिक कामनाओं की पूर्ति के लिए किए जाते हैं, लेकिन यदि इन व्रत-उपवासों के साथ निष्काम-निर्मल भावना जुड़ी हो तो इनका आध्यात्मिक लाभ भी व्यक्ति को मिलता है। व्रत और उपवास समान माने जाते हैं, लेकिन इनमें थोड़ी भिन्नता भी है। व्रत में संकल्प के साथ नियमावली होती है, हर व्रत के अलग नियम होते हैं, विधि-निषेध की प्रक्रियाएँ होती हैं, उनका पालन करना इसमें जरूरी होता है, लेकिन उपवास में बस, अन्न का त्याग होता है, परमात्मा का चिंतन होता है, यानी परमात्मा के समीप वास होता है। व्रत की तरह इसमें कुछ कठोर नियमावली नहीं होती, इसलिए उपवास, व्रत नहीं होता, लेकिन व्रत, उपवास की तरह हो सकता है।

आज दुनिया में जहाँ तरह-तरह की बीमारियाँ अपने पैर पसार रही हैं, वहाँ लोगों का ध्यान अब व्रत-उपवास की ओर जा रहा है। आज दुनिया भर के अनेक वैज्ञानिक व्रत-उपवास के लाभों को लेकर निरंतर शोध-अध्ययन कर रहे हैं। शोध-अध्ययनों से यह बात सामने आई है कि एक निश्चित क्रम में उपवास करने से अनेक प्रकार के स्वास्थ्य लाभ हो सकते हैं। इनमें वजन घटाने से लेकर हाई ब्लडप्रेशर और कोलेस्ट्रॉल को कम करना आदि भी शामिल हैं।

आज अमेरिका, चीन जैसे विकसित देशों से लेकर भारत जैसे विकासशील देशों में मोटापा एक अभिशाप बनता जा रहा है। डायबिटीज, हृदय रोग और कैंसर से लेकर बढ़ती उम्र के साथ होने वाली बीमारियाँ एक बड़ी जनसंख्या को अपनी गिरफ्त में ले रही हैं, ऐसे में व्रत-उपवास की महत्ता को लेकर चर्चा सब तरफ जोरों पर है। अमेरिका स्थित नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ एजिंग की न्यूरोसाइंस लेबोरेट्री के प्रमुख और जॉन हॉपकिन्स विश्वविद्यालय में न्यूरोसाइंस के प्रोफेसर मार्क मैटसन पिछले कई वर्षों से इस विषय पर शोधकार्य कर रहे हैं और उन्होंने अभी तक यह पाया है कि उपवास करने से हृदय, मांसपेशियाँ, आँत और शरीर के अन्य अंग बेहतर ढंग से कार्य कर पाते हैं और इससे मस्तिष्क की कार्यशक्ति भी बढ़ती है।

प्रोफेसर मार्क के अनुसार—उपवास के दौरान ऊर्जा की खपत कम होने से मस्तिष्क बढ़ती उम्र के साथ तंत्रिका तंत्र (नर्वस सिस्टम) से संबंधित रोगों को रोकने में सफल होता है। इससे याददाश्त बढ़ती है और व्यक्ति प्रसन्न रहता है, इससे अल्जाइमर और पार्किंसन जैसे याददाश्त संबंधी रोगों को नियंत्रित करने में भी मदद मिलती है। वर्षों से जारी अपने प्रयोगों के आधार पर प्रोफेसर मार्क इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि अगर प्रति सप्ताह दो दिन का उपवास किया जाए तो इससे मस्तिष्क के हिप्पोकैंपस क्षेत्र की क्षमता में सुधार आता है, जिसका मुख्य संबंध हमारी स्मृति-क्षमता से है। व्रत-उपवास से मस्तिष्क की कोशिकाओं में एमिलॉयड प्लेक एकत्र नहीं हो पाता। यह एमिलॉयड प्लेक एक प्रकार का प्रोटीन है, जो अल्जाइमर के मरीजों में पाया जाता है। उनके अनुसार, तंत्रिका तंत्र के सशक्त होने से व्यक्ति में अवसाद जैसी समस्याएँ उत्पन्न नहीं होतीं। इसके साथ ही व्रत-उपवास समूचे मस्तिष्कीय क्रियाकलापों पर अपना सकारात्मक प्रभाव डालते हैं।

▶युवाक्रांति वर्ष◀

आयुर्वेद में व्रत-उपवास की तरह ही लंघन एक विशिष्ट चिकित्सापद्धति है, जिसके द्वारा शरीर के विषाक्त तत्त्वों को कम करने और उन्हें बाहर निकालने की प्रक्रिया संपन्न होती है। लंघन का शाब्दिक अर्थ है—शरीर में लघुता या हलकापन लाना। लंघन में रोग और व्यक्ति की अवस्था के अनुसार एक निश्चित समय सीमा के लिए किसी भी प्रकार के भोजन का त्याग करना होता है। इसका उद्देश्य शरीर में चयापचय क्रिया (मेटाबॉलिज्म) के दौरान उत्पन्न विषाक्त तत्त्वों का पाचन कर अग्नि तत्त्व की वृद्धि करना होता है। व्रत-उपवास या लंघन से मिलने वाले कुछ लाभ इस प्रकार हैं—शरीर से मल-मूत्र व अपान वायु का समुचित रूप से बाहर निकलना, तरोताजा और ऊर्जावान महसूस करना, शरीर की सभी प्रक्रियाओं में सुधार होना, सुस्ती व थकान दूर होना, भूख-प्यास व नींद का संतुलित होना, मन का शांत और प्रसन्नचित्त होना।

स्वास्थ्य विशेषज्ञों का भी अब यह मानना है कि यदि व्रत-उपवास ठीक तरह से किए जाएँ तो खुद को सेहतमंद रखने के लिए यह बहुत अच्छी प्रक्रिया है। आजकल के पैकेटबंद खाद्य पदार्थों में बहुत कुछ ऐसा मिला होता है, जो शरीर में विषाक्त तत्त्वों के रूप में जमा हो जाता है। व्रत-उपवास की प्रक्रिया से वसा की मात्रा घटती है, शर्करा नियंत्रित होती है और यकृत, वृक्क जैसे शरीर के अन्य अंगों से विषैले तत्त्व बाहर निकलते हैं। इसके साथ ही व्रत-उपवास से खान-पान की आदत में सुधार आता है व हमारी प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।

व्रत-उपवास करने से हमारी पाचन-क्रिया को कुछ घंटों तक अथवा कुछ समय के लिए विश्राम मिलता है। इसकी वजह से व्यक्ति की चयापचय की क्रिया अधिक कुशलता से कार्य करती है। यदि व्यक्ति की पाचनशक्ति कमजोर है तो उसकी शरीर में वसायुक्त पदार्थों को पचाने की क्षमता कम हो जाती है। व्रत-उपवास से पाचनशक्ति की क्रिया का सही रूप में संचालन होता है तथा इससे शरीर की चयापचय क्रिया भी सुधरती है। शोध-अध्ययनों से यह भी पता चला है कि व्रत-उपवास से एलर्जी संबंधी बीमारियाँ भी ठीक होती हैं और आँतों की बीमारी में भी इससे लाभ होता है।

विशेषज्ञों के अनुसार, हर कोई व्रत नहीं रख सकता, जैसे—गर्भवती महिलाएँ, बच्चों को दुग्धपान कराने वाली महिलाएँ, कुपोषित व्यक्ति, हृदय एवं ऐसी अन्य बीमारियों से ग्रस्त व्यक्ति, मधुमेह से पीड़ित व्यक्ति आदि। व्रत व उपवास में व्यक्ति को अपने खान-पान पर विशेष संयम रखना पड़ता है, जैसे इसमें सादा नमक नहीं लिया जाता। जो लोग बिना नमक के नहीं रह सकते, वे सेंधा नमक ग्रहण करते हैं। जल, फल, फलों का रस, नीबू-पानी आदि का इसमें भरपूर सेवन किया जाता है। व्रत में चीनी या गुड़ को ग्रहण करने की भी एक सीमा है। जो लोग अस्वाद व्रत रखते हैं, वे नमक, चीनी, दोनों का ही त्याग कर देते हैं। अलग-अलग व्रत के विधान अलग-अलग होते हैं। किसी में केवल फलाहार करते हैं, तो किसी में एक समय भोजन भी कर सकते हैं।

नास्ति वेदात् परं शास्त्रं नास्ति मातृसमो गुरुः।
न धर्मात् परमो लाभस्तपो नानशनात्परम्॥

वेद से बड़ा कोई शास्त्र नहीं है, माता के समान कोई गुरु नहीं है, धर्म से बड़ा कोई उत्कृष्ट लाभ नहीं है तथा उपवास से बड़ी कोई तपस्या नहीं है।

—वेदव्यास (महाभारत, अनुशासनपर्व, १०६/६५)

यह सच है कि व्रत-उपवास में सही खान-पान यानी आहार की अहम भूमिका है, आहार यानी जो हम ग्रहण करते हैं, तो इसमें सभी प्रकार के आहार सम्मिलित हैं, यानी शारीरिक के साथ-साथ मानसिक, भावनात्मक, आध्यात्मिक भी। मानसिक आहार में हमें अच्छे विचारों को ग्रहण करना चाहिए, नकारात्मक विचारों से बचना चाहिए। भावनात्मक आहार में शुभ भावों को ग्रहण करना चाहिए, क्रोध-बैर-ईर्ष्या-द्वेष आदि अशुभ भावों का त्याग करना चाहिए और आध्यात्मिक आहार में प्रार्थना, मंत्रजप, ध्यान, उपासना आदि को ग्रहण करना चाहिए और कुसंग का त्याग करना चाहिए। इस तरह व्रत-उपवास का यदि संपूर्ण लाभ लेना है तो हमें उचित खान-पान के साथ, सही आहार-विहार का भी ध्यान रखना चाहिए और जरूरत पड़े तो इस संदर्भ में विशेषज्ञों से भी सलाह ले लेनी चाहिए। ❑

बुद्धि के तिरोहित होने पर प्रकट होते हैं परमात्मा

(श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विभाग योग नामक त्रयोदश अध्याय की नवीं किस्त)

[त्रयोदश अध्याय की आठवीं किस्त में पंद्रहवें एवं सोलहवें श्लोक की व्याख्या व विवेचना को प्रस्तुत किया गया था। इसके पंद्रहवें श्लोक में योगेश्वर श्रीकृष्ण ने बताया कि परमात्मा चर व अचर सब भूतों के बाहर व भीतर परिपूर्ण है। वही चर है और वही अचर है। वह सूक्ष्म होने से अविज्ञेय है। अति समीप भी वही है और अति दूर भी वही है। इस सूत्र में संकेत है—परमात्मा की समग्र अनुभूति का। हमारी सामान्य समझ जड़-चेतन के रूप में, बाहर व अंदर के रूप में, समीप व दूर के रूप में सत्य को विभाजित करती है। इसे प्रकाशित व परिभाषित करती है। लेकिन यह समझ, यह परिभाषा अधूरी है और अपूर्ण है। इस विभाजन को गिरा देने पर, द्वंद्व को मिटा देने पर परमात्मा के सत्य का प्रकाश, परिभाषा व समझ पूरी होती हैं।

इसके बाद के सोलहवें श्लोक में इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि वह विभागरहित होने पर भी चर व अचर भूतों में विभाजित प्रतीत होता है। वह जानने योग्य परमात्मा विष्णु रूप से धारण-पोषण करने वाला, रुद्र रूप से संहार करने वाला तथा ब्रह्मा रूप से सृजन करने वाला है। परमात्मा की यह अनुभूति, उसके बारे में ऐसी समझ निश्चित ही हमारे जीवन को राग-द्वेष से मुक्त करने में समर्थ है। इसी के साथ यदि यह सत्य आत्मसात् हो जाए कि वही बनाने वाला है, वही मिटाने वाला है और वही सँभालने वाला है तो फिर न तो शोक का कोई कारण है और न ही संताप का। क्योंकि हमारे जीवन की हर परिस्थिति, परिदृश्य व घटनाक्रम में वह हमारे साथ है, वही हमारी नियति है और वही नियामक, तब फिर शोक कैसा और मोह क्यों ?]

इतना कहने के पश्चात श्रीभगवान आगे कहते हैं—

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥ १७॥

शब्दविग्रह—ज्योतिषाम्, अपि, तत्, ज्योतिः, तमसः, परम्, उच्यते, ज्ञानम्, ज्ञेयम्, ज्ञानगम्यम्, हृदि, सर्वस्य, विष्ठितम्॥

शब्दार्थ—और—वह परब्रह्म (**तत्**); ज्योतियों का (**ज्योतिषाम्**); भी (**अपि**); ज्योति एवं (**ज्योतिः**); माया से (**तमसः**); अत्यंत परे (**परम्**); कहा जाता है (**उच्यते**); वह परमात्मा-बोधस्वरूप (**ज्ञानम्**); जानने के योग्य (**ज्ञेयम्**); एवं-तत्त्वज्ञान से प्राप्त करने योग्य है (**ज्ञानगम्यम्**); सबके (**सर्वस्य**); हृदय में (**हृदि**); विशेष रूप से स्थित है (**विष्ठितम्**)।

श्रीभगवान के इन वचनों में अनुभव का शिखर प्रकट हो रहा है, प्रकाशित हो रहा है। इसके पहले के वचन में कहा गया था कि परमात्मा अविज्ञेय है, समझ में न आने वाला है और फिर जानने योग्य भी वही है। इस वचन में उलटवाँसी है। ऐसा लगता है कि इनमें परस्पर विरोध है, लेकिन ऐसा है नहीं। परमात्मा समझ में नहीं आएगा—यदि हमने समझदारी बरती, यदि हमने सोचा कि उसे बुद्धि से समझ लेंगे, उसे तर्क से प्रमाणित करेंगे, गणित के सूत्र व समीकरण से हल कर लेंगे। इन सभी प्रयासों के परिणाम में तो परमात्मा अविज्ञेय है और वही बना रहेगा; क्योंकि ये प्रयास हमारे हैं, प्रमाण हमारे हैं और ये सभी मिलकर भी हमसे बड़े नहीं हो सकते।

परमात्मा तो विराट है, अनंत है और हमसे बड़ा है, फिर जानने योग्य भी वही है। तो इसका मतलब यह हुआ कि जानने का कोई और जतन करना होगा। कोई और विधि हमें खोजनी होगी। बुद्धि उसे जानने में न तो सहयोगी है और न ही समर्थ। बुद्धि से अलग हटकर कोई उपाय हमें ढूँढ़ना होगा और यह उपाय हमारे अपने हृदय के प्रेम में है, भक्ति में है। प्रेम के अनुभव को बुद्धि से नहीं समझा जा सकता। माता अपने पुत्र को बुद्धि के ढंग से नहीं समझती। उसे जानने के लिए तर्क के उपकरण

►युवाक्रांति वर्ष◄

का प्रयोग नहीं करती। वह तो उसे हृदय की धड़कन से जुड़कर जानती है, वह उसे पहचानती है। अच्छी तरह से जानती है, लेकिन यह मार्ग मस्तिष्क से होकर नहीं गुजरता। यह हृदय की धड़कन से और भाव अनुभूति से जुड़ा होता है।

परमात्मा को जानने के लिए बुद्धि और तर्क उपकरण नहीं हैं। बुद्धि को एक तरफ रख देना, बोध का मार्ग है। इसीलिए सारी साधनाएँ बुद्धि को हटा देने की, मिटा देने की, इसे विसर्जित व विलय कर देने की साधनाएँ हैं। जो बुद्धि को वस्त्रों की तरह उतारकर एक ओर रख देने में समर्थ हो जाते हैं, वो ही परमात्मा की परम अनुभूति को प्राप्त करते हैं। प्रेम में, प्रार्थना में एवं ध्यान में बुद्धि की कोई आवश्यकता नहीं है। बुद्धि के तिरोहित होने पर ही बोध का प्रकाश फूटता है। तभी इन वचनों का साक्षात्कार होता है, जो श्रीभगवान ने इस प्रकरण में कहे हैं।

परमात्मा प्रकाश का परम स्रोत है। सभी ज्योतियाँ उसी की ज्योति से निस्सृत होती हैं। तमस् उसे स्पर्श भी नहीं कर सकता। तमस् के सभी दोष, भय-भ्रम, भटकन एवं भ्रांति तो उसके स्मरण से ही मिट जाते हैं। वह माया से पार और परे है। वह बोधस्वरूप और जानने योग्य है, उसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी जानने योग्य नहीं है। लेकिन यह जानना, उसका ज्ञान, उसका तत्त्वज्ञान बुद्धि की सँकरी सीमाओं में संभव नहीं है। इसके लिए तो प्रेम का प्रवाह, प्रार्थना के स्वर और ध्यान की लगन चाहिए।

ऐसा इसलिए है क्योंकि बुद्धि बहुत ही संकीर्ण है, इसमें क्षुद्रताएँ हैं। इसका उपयोग तो संसार और सांसारिकता के लिए है। जहाँ संकीर्ण की हम खोज कर रहे हैं, क्षुद्र का आविष्कार कर रहे हैं, वहाँ बुद्धि का उपयोग, प्रयोग ठीक है। लेकिन जैसे ही हम विराट की ओर बढ़ते हैं, जैसे ही हम प्रकाश के परम स्रोत की ओर बढ़ते हैं, बुद्धि बहुत ही संकीर्ण मार्ग बन जाती है। इस सँकरे रास्ते से परमात्मा की व्यापकता में प्रवेश संभव नहीं है। इसीलिए तर्क को, बुद्धि को परमात्मा के बोध के लिए अस्वीकार किया गया है।

परमात्मा के परम प्रकाश व उससे परम प्रेम करने वाले संतों ने न मालूम कितनी तरकीबों से, कितनी तकनीकों से बस एक ही बात सिखाई है कि हम अपनी बुद्धि से मुक्त हों। यह बात विचित्र है और सांसारिक तौर-तरीकों के सर्वथा विपरीत भी; क्योंकि सामान्य क्रम में हम सबको, हममें से प्रायः हरेक को यही लगता है कि बुद्धि को बचाकर रखना है। बुद्धि को साथ लेकर चलना है। बुद्धि के तौर-तरीके इस्तेमाल करने हैं। सोच-विचारकर अपना काम करना है। तर्क का, गणित का हिसाब बिठाकर रखना है, कहीं कुछ धोखा न हो जाए। कहीं ऐसा न हो कि हम बुद्धि को उतारकर रखें और इतने में सारी गड़बड़ हो जाए और तब हम कुछ भी न कर सकेंगे।

इसीलिए हम प्रायः सभी समय बुद्धि को पकड़े रहते हैं; क्योंकि बुद्धि के इस्तेमाल करने से हमें लगता है कि हमारा नियंत्रण है, हमारा कंट्रोल बना हुआ है और बुद्धि के हटते ही हमारा नियंत्रण खो जाता है और तब हम सहज प्रकृति के हिस्से हो जाते हैं। उसके अविभाज्य अंग हो जाते हैं। इसीलिए हमें डर लगता है। हालाँकि इस डर में एक वजह भी है। हम अपने जीवन में इसे देखते भी हैं। प्राकृतिक आवेगों के समय हमारी बौद्धिक व्यवस्था चरमरा जाती है, प्रायः ध्वस्त हो जाती है। काम, क्रोध, भूख, नींद में हमारा बौद्धिक तंत्र, तर्क-प्रणाली काम नहीं करती।

परमात्मा तो स्वयं में प्रकृति की परिष्कृति और श्रेष्ठता का परम स्वरूप है। इसमें प्रकृति की कोई विकृति नहीं है। लेकिन एक बात यहाँ अवश्य है कि इसकी सक्रियता तभी होती है, जब हमारी बुद्धि निष्क्रिय हो जाती है। ऐसा होने पर ही हमें वह परम अनुभूति हो पाती है, जिसे श्रीभगवान अपने इस वचन में बता रहे हैं। हम उस परम ज्योति का अनुभव प्राप्त करते हैं। उसे जान पाते हैं, जो जानने योग्य है और तब उसके तत्त्व का ज्ञान हमारा स्वभाव बन जाता है।

इतना कहने के पश्चात श्रीभगवान अपने प्रिय सखा एवं अनन्य भक्त अर्जुन से कहते हैं—

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते॥ १८॥

शब्दविग्रह—इति, क्षेत्रम्, तथा, ज्ञानम्, ज्ञेयम्, च, उक्तम्, समासतः, मद्भक्तः, एतत्, विज्ञाय, मद्भावाय, उपपद्यते॥

शब्दार्थ—हे अर्जुन! इस प्रकार (**इति**); क्षेत्र (**क्षेत्रम्**), तथा (**तथा**); ज्ञान (**ज्ञानम्**); और (**च**); जानने योग्य परमात्मा का स्वरूप (**ज्ञेयम्**); संक्षेप से (**समासतः**); कहा गया (**उक्तम्**); मेरा भक्त (**मद्भक्तः**); इसको (**एतत्**); तत्त्व से जानकर (**विज्ञाय**); मेरे स्वरूप को (**मद्भावाय**); प्राप्त होता है (**उपपद्यते**)।

भगवान श्रीकृष्ण अपने इस वचन में अब तक कहे हुए की फलश्रुति, उसका परिणाम बताते हैं। वे कहते हैं कि क्षेत्र व क्षेत्रज्ञ के संबंध में, ज्ञान व ज्ञान के साधन के संबंध में सारभूत बातें कही गईं। इनका विस्तार तो व्यापक है, इस संबंध में जो भी कहा गया, वह संक्षेप में कहा गया। इसे अगर कोई तत्त्व से जान ले, तो वह मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है। इस प्रकरण में तत्त्व से जानने का महत्त्व कहा गया है। सत्य को तत्त्व से जानना महत्त्वपूर्ण है। जानने के और भी कई तरीके हैं। इन्हें समय-समय पर अलग-अलग ढंग से प्रयोग में लाया जाता है। इनके अपने परिणाम भी हैं, लेकिन ईश्वरप्राप्ति तभी होती है, जब सत्य को तत्त्व से जाना जाए।

इसलिए तत्त्व से जानने की अनुभूति करना आवश्यक है। एक तो जानकारी होती है सूचना की। संचार क्रांति के वर्तमान युग में, इंटरनेट के इस दौर में सूचनाएँ अतिव्यापक एवं जन-जन को सुलभ हो जाती हैं। हम घर बैठे हुए अपनी मनचाही सूचना प्राप्त करने में सक्षम हैं। कोई कहता है हम सुन लेते हैं। जो वह जानता है, उसे हम भी जान लेते हैं। कहने-सुनने के अलावा पुस्तकें और पुस्तकालय हैं, इनमें सूचना के विशाल भंडार हैं, लेकिन इस जानकारी में, इस सूचना में शब्द तो हैं, पर सत्य की अनुभूति नहीं है। अनुभूति के लिए शब्द संकेत तो कर सकते हैं, पर इसे पाने के लिए हमें स्वयं गहरे में उतरना पड़ता है।

उदाहरण के तौर पर, हमने कहीं से सूचना पाई कि सागर का जल खारा है, लेकिन यह सूचना शाब्दिक है। संभव है कि हमने जल देखा हो, सागर को भी देखा हो, खारेपन के बारे में भी हमें पता हो कि यह क्या होता है, लेकिन यह समझ शाब्दिक या अधिक-से-अधिक वैचारिक हो सकती है। जब तक हम स्वयं सागर के जल को चखेंगे नहीं, हमें सही अनुभूति नहीं हो सकेगी, सागर के जल के तत्त्व का पूरा ज्ञान न हो सकेगा। यह तो सागर के जल को चखने के बाद ही संभव है। स्वयं के अनुभव से जो हमें ज्ञान होता है, वही तत्त्वज्ञान है। दूसरे के कहने-सुनने से, पढ़ने-पढ़ाने से तो केवल शब्दों का परिचय मिल पाता है। हम स्वयं तो खाली-के-खाली रह जाते हैं।

हम सभी के जीवन में यह बड़ी विडंबना है कि हमने जानकारी को ज्ञान मान लिया है। सूचना को, शब्दों को एकत्रित करके हम स्वयं को ज्ञानी मानने के झूठे एहसास के साथ जी रहे हैं। जबकि वास्तविकता ऐसी नहीं है। ज्ञान न तो सूचना में है और न शब्दों में, बल्कि ज्ञान तो अनुभूति में है। जिसकी अनुभूति जितनी व्यापक है, जितनी सूक्ष्म है, वह उतना ज्ञानी है। अनुभूतिविहीन सूचनाएँ तो बस, अज्ञान का बोझ बढ़ाती हैं।

कई बार ज्ञान को स्मरणशक्ति के पैमाने पर मापने की भूल की जाती है। कुछ लोग बड़े गर्व और दर्प के साथ घोषणा करते हैं कि उन्हें श्रीमद्भगवद्गीता कंठस्थ है। जब चाहे तब, वे रटाए गए तोते की तरह इसे दोहरा सकते हैं। ऐसा जब-तब वे करते भी हैं और इसके लिए वाहवाही भी लूटते हैं। अपने स्मरण या रटन का करतब दिखलाकर जहाँ-तहाँ अथवा जब-तब प्रशंसा बटोरते रहते हैं। इस सभी प्रशंसा और समूची वाहवाही के बावजूद गीता उनके कंठ में ही अटकी रहती है। कंठ से नीचे उतर नहीं पाती। कभी भी यह हृदय की अनुभूति नहीं बन पाती। अनुभूति के बिना गीता कंठ में बनी रहे या फिर पुस्तक में, स्थिति तो एक-सी है। जीवन का बोध तो जीवन में उतर ही नहीं पाता।

ज्ञान न तो शब्दों से प्रमाणित होता है और न ही विचारों से। स्मरण का पिटारा भी ज्ञान का परिचय नहीं दे पाता। ज्ञान का वास्तविक परिचय या यथार्थ प्रकाश तो जीवन की अनुभूति में मिलता है। ज्ञान की अनुभूति से ही परिवर्तन व रूपांतरण घटित होता है। अनुभूति के पारस के स्पर्श से अनगढ़ सुगढ़ में और लौह स्वर्ण में परिवर्तित होता है। इसलिए ज्ञान को कंठस्थ करने की जरूरत नहीं है। कंठस्थ का मतलब ही हुआ कि सच का हमें पता नहीं है। जो कुछ है, वह गले में अटक गया है। गले की फाँस बन गया है। हमारे भीतर नहीं है, बस शब्दों का स्मरण है।

हममें से प्रायः बहुतों की यही स्थिति है। हमें शब्द याद हैं और शब्दों को दोहराते हुए इन्हें याद करके हमें भ्रांति होने लगी है कि हमें ज्ञान हो गया है। यह स्थिति ठीक नहीं है। अज्ञान में ज्ञान की भ्रांति खतरनाक है। इस स्थिति में हम भूल ही जाते हैं कि हमें वास्तविकता का पता नहीं है। कहते-सुनते, दोहराते हमें ऐसा लगने लगता है कि हमें मालूम है कि ईश्वर है। आत्मा-आत्मा दोहराते हुए हम इस सचाई को भूल जाते हैं कि आत्मा का न तो हमें पता है और न ही कोई अनुभव है। यह बड़ी खतरे की स्थिति है; क्योंकि शब्द, विचार और सूचनाएँ एक भ्रम पैदा कर देते हैं कि हमें ज्ञान हो गया है।

ऐसी ही स्थिति की चर्चा करते हुए आद्य शंकराचार्य ने विवेक चूड़ामणि में कहा है—**'शब्दजालं महारण्यं, चित्तविभ्रमकारणम्'**—शब्दों का जाल भीषण वन की तरह है, जिसमें चित्त भ्रमित होता रहता है। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के विषय में जो मैंने कहा—संक्षेप में मैंने जिसकी चर्चा की, उसे जो तत्त्व से जान लेता है, वह मुझे प्राप्त हो जाता है। शब्दों के कहने-सुनने का, विचारों की चर्चा का महत्त्व बस इतना है कि उनसे प्रेरित हुआ जाए। उस दिशा में आगे बढ़ा जाए। श्रीरामकृष्ण परमहंस ने दक्षिणेश्वर में अपने भक्तों व शिष्यों को सत्संग में कहा—घर से चिट्ठी आई है कि धोती, लोटा और मिठाई लाना है। चिट्ठी पढ़ने से संदेश मिल गया, अब बार-बार चिट्ठी को दोहराने से कुछ न होगा। अब तो बाजार जाने और सारा सामान खरीदने की जरूरत है।

बस, इसी तरह, शब्द, विचार व स्मृति शुभ होने पर भी संपूर्ण नहीं हैं। ये पर्याप्त नहीं हैं। अब इन्हें अनुभूति में परिवर्तित करने की जरूरत है। जो अनुभूति हो सकी, वही अपनी है। जिसकी अनुभूति हो पाई, वही तत्त्व है। जिनकी अनुभूति नहीं हो पाई, वो सिर्फ धारणाएँ हैं, प्रत्यय हैं। इनसे जीवन में परिवर्तन या रूपांतरण होने वाला नहीं है। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—जो तत्त्व से जानता है, वह मेरा भक्त मेरे स्वरूप को उपलब्ध हो जाता है। यह स्वाभाविक भी है, जो तत्त्व से जानेगा, वह परम ईश्वर के स्वरूप के साथ एक हो ही जाएगा। इसमें कोई भी बाधा नहीं है। ❑

जाड़े के दिन थे। शाम हो गई थी। आसमान में बादल छाए थे। एक नीम के पेड़ पर बहुत से कौए बैठे हुए थे। वे सब काँव-काँव कर रहे थे। उसी समय एक मैना आई और उस नीम के पेड़ की डाल पर बैठ गई। मैना को देखते ही कौए उस पर टूट पड़े। मैना ने कहा—"बादल बहुत हैं, इसलिए आज जल्दी अँधेरा हो गया है। मैं अपने घोंसले का रास्ता भूल गई हूँ, आज रात मुझे यहीं बैठे रहने दो। इस सरदी में यदि वर्षा हुई और ओले पड़े तो मेरे प्राण संकट में पड़ जाएँगे। भगवान के लिए मुझ पर दया करो, मुझे आज यहीं रुकने दो।" कौओं ने कहा—"तू बहुत भगवान का नाम लेती है तो भगवान के भरोसे यहाँ से चली क्यों नहीं जाती? तू नहीं जाएगी तो हम सब तुझे मारेंगे।" बेचारी मैना वहाँ से उड़ गई और थोड़ी दूर जाकर आम के पेड़ पर बैठ गई। रात को आँधी आई। बादल गरजे और बड़े-बड़े ओले पड़ने लगे। कौए काँव-काँव करके इधर-से-उधर थोड़ा-बहुत उड़े, परंतु ओलों की मार से घायल होकर जमीन पर गिर पड़े। बहुत से कौए मर भी गए। मैना जिस आम के पेड़ पर बैठी थी, उसकी एक मोटी डाल आँधी में टूट गई। डाल टूटने पर उसकी जड़ के पास पेड़ में कोटर बन गया। मैना उसमें घुस गई और ओलों से उसकी रक्षा हो गई। सवेरे धूप निकलने पर मैना कोटर से निकली और उड़ने लगी। उसे उड़ता देख एक घायल कौए ने उससे पूछा—"तुम रात में कहाँ रहीं और ओलों की मार से कैसे बचीं?" मैना बोली—"मैंने भगवान से प्रार्थना की और उन्होंने मुझे बचा लिया।" दु:ख में पड़े असहाय जीव को भगवान के सिवाय और कौन बचा सकता है।

मात्र भटकाते हैं कुतर्क

नालंबी ज्ञानप्राप्ति के लिए अत्यंत जिज्ञासु थी और एकांत में चिंतन-मनन करती रहती थी। उसकी कल्पनाएँ मन के गगन में सुदूर तक विचरण तो करती थीं, परंतु अपने अभीष्ट लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाती थीं। उसके मन में अनेकों तर्क उभरते थे, परंतु प्राय: उनसे उसकी उलझन और बढ़ ही जाया करती थी। परंतु उसकी एक अच्छी बात यह थी कि जब उसके तर्क को समुचित समाधान मिल जाता था तो फिर वह अडिग होकर समाधान को क्रियान्वित करने में लग जाती थी। फिर उसे कोई डिगा नहीं सकता था। इसलिए उसे समझाना आसान नहीं था और समझ जाने पर भ्रमित करना भी आसान नहीं था।

सामान्यत: लोग एकांत से भागते हैं, डरते हैं और भीड़ की तलाश करते हैं, भीड़ के बीच वे सुकून महसूस करते हैं। वह भीड़ चाहे अपनों की हो या फिर टीवी में आने वाले अनेक प्रकार के चैनलों की या फिर बाजार में घूमने वालों की। लोग इस भीड़ के बीच स्वयं को बड़ा ही सुरक्षित अनुभव करते हैं; जबकि अकेले होने पर वे असुरक्षित महसूस करने लगते हैं। इसलिए लोग अकेलेपन से, एकांत से भागते हैं। परंतु नालंबी के साथ ऐसा नहीं था। वह भीड़ में हो अथवा एकांत में हो, दोनों में सहजता से रहती थी। एकांत होने की स्थिति में वह अपने समय का सदुपयोग लेखन, स्वाध्याय आदि में करने लगती थी।

नालंबी को कोई पुस्तक पसंद आ जाती थी, या फिर उसे कोई कविता, निबंध या लेख मिल जाते थे तो फिर उसे समय का भान नहीं रहता था। उसे यह पता नहीं रहता था कि रात गुजरने वाली है या सुबह से शाम हो गई है। वह अपने कार्य में इतना व्यस्त रहती थी कि उसे अन्य चिंताएँ व्यथित नहीं कर पाती थीं। नालंबी से उसके पिता कहते थे—''पुत्री! सदा शुभकर्म करते रहना और स्वाध्याय के विचारों में रमण करते रहना। इस बात की परवाह नहीं करना कि कौन तुम्हें क्या कह रहा है, यह फिक्र मत करना कि कौन तुम्हारे बारे में अच्छा सोचता है या कौन बुरा सोचता है। प्रशंसा और निंदा, इन दोनों के प्रति तटस्थ रहना ही श्रेयस्कर है। ध्यान रखना कि लोगों के द्वारा की जाने वाली प्रशंसा-निंदा का बहुत औचित्य नहीं होता है।''

नालंबी को अपने पिता की इस सीख ने बड़ा संबल प्रदान किया था। वह अपनी पढ़ाई करती थी, शेष समय स्वाध्याय करती थी, चिंतन-मनन करती थी। सौभाग्य से उसे ऐसे माता-पिता मिले थे, जो उसके लिए मित्र, गुरु, मार्गदर्शक सब कुछ थे। नालंबी यदि कभी अपनी माँ से किसी विषय पर तर्क करती तो वे कहती थीं—''पुत्री! तुम अपने पिता से तर्क करना, वे ही तुम्हें समुचित उत्तर दे सकते हैं। तर्क तो कभी भी कुतर्क बन सकता है।'' नालंबी बोली—''माँ! यही तो मुझे जानना है कि तर्क, कब कुतर्क बन जाता है और तर्क, कब सत्य की अनुभूति कराता है।''

नालंबी की माँ भावप्रवण थीं। भावनाशील व्यक्ति तर्क को अधिक प्रश्रय नहीं देता है। उसके लिए भाव इतना सघन होता है कि तर्क उसके पीछे-पीछे चलने लगता है। उनकी बातों का संज्ञान लेते हुए उस शाम नालंबी ने अपने पिता से पूछा—''पिताजी! तर्क से ज्ञान और अज्ञान का कोई संबंध है क्या? यदि है तो आप हमें यह बताइए कि तर्क से कब ज्ञान जन्म लेता है और कब अज्ञान को प्रश्रय मिलता है?'' इसी बीच उसकी माँ भी वहाँ आ गईं और वहाँ आकर अपने पति के समीप बैठ गईं।

नालंबी के पिता बोले—''नालंबी! तर्क का सदुपयोग होता है तो उसका दुरुपयोग भी हो सकता है। सच तो यह है कि तर्क का दुरुपयोग, कुतर्क के रूप में अधिक होता है। जहाँ तक बात तर्क और ज्ञान के बीच संबंध की है तो यह समझ लेना चाहिए कि जब तर्क, सत्य की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त होता है तो ज्ञान का आविर्भाव होता है। तर्क का उपयोग है कि इसे सदा सत्य की अभिव्यक्ति के लिए प्रयोग किया जाए और जब ऐसा होता है तो फिर सच्चा ज्ञान जन्म लेता है।''

उसके पिता आगे बोले—''पुत्री! तर्क का दुरुपयोग तब होता है, जब उसे असत्य के लिए प्रयुक्त किया जाता

है। ऐसी स्थिति में उससे अज्ञान जन्म लेता है। सत्य के साथ जुड़कर तर्क, प्रमाण बनता है। प्रमाण, तर्क का सकारात्मक स्वरूप है। परंतु तर्क असत्य के साथ जुड़कर संशय, संदेह, शक आदि को जन्म देता है। इसी को कुतर्क कहते हैं, जो हमें सदा संशय और संदेह में डाल देता है। और इस कुतर्क से स्वयं की क्षमता एवं सामर्थ्य पर संदेह होने लगता है, हम स्वयं परेशान होने लगते हैं। सत्य घटनाक्रम की वास्तविकता होता है और झूठ बस, एक कोरी कल्पना। इसलिए सत्य के साथ तर्क जितना अधिक जुड़ता है, उतनी अधिक प्रमाण में वृद्धि होती है। झूठ के साथ तर्क जितना ज्यादा जोड़ा जाता है, संशय उतने ही अधिक बढ़ जाते हैं।''

नालंबी ने पूछा—''पिताजी! तर्क का भाव के साथ क्या संबंध है?'' प्रत्युत्तर में उसके पिता बोले—''पुत्री! तर्क भाव के पीछे चले तो उससे सत्य के अनुसंधान की प्रेरणा मिलती है। यहाँ तक कि परमात्मा की खोज में भी संलग्न हुआ जा सकता है; लेकिन तर्क के पीछे यदि भाव को घसीटें तो मुश्किल खड़ी हो जाती है। तर्क का प्रयोग सभी करते हैं। नास्तिक और आस्तिक, दोनों तर्क से स्वयं को प्रमाणित करने की कोशिश करते हैं, लेकिन नास्तिक के तर्क किसी को अनुभूति तक नहीं ले जा सकते। बस, केवल उसके संशय को बढ़ा सकते हैं; जबकि आस्तिक के तर्क, जीवन को सार्थक अनुभूति देने में समर्थ होते हैं। अतः तर्क को अभिव्यक्ति तक सीमित न रखकर अनुभूति में बदल देने में ही इसकी सार्थकता है।''

अपने पिता के शब्दों को सुनकर नालंबी के मन से तर्क की तीक्ष्णता गायब हो रही थी और भावनाओं की सघनता जन्म ले रही थी, जिनका सहारा लेकर अंतस् में भक्ति के भावों को जन्म दिया जा सकता था। वह समझ गई थी कि तर्क भटकाते हैं और भाव पहुँचाते हैं। ❑

दो बंदर एक दिन घूमते-घूमते एक गाँव के समीप पहुँच गए। उन्होंने वहाँ फलों से लदा पेड़ देखा। एक बंदर ने दूसरे से चिल्लाकर कहा—''इस पेड़ को देखो। ये फल कितने सुंदर दिख रहे हैं। ये अवश्य ही स्वादिष्ट होंगे। चलो, हम दोनों पेड़ पर चढ़कर फल खाएँ।'' दूसरा बंदर बुद्धिमान था। उसने कुछ सोचकर कहा—''नहीं, नहीं। जरा ठहरो! यह पेड़ गाँव के समीप है और इसके फल इतने सुंदर और पके हुए हैं, लेकिन यदि ये फल अच्छे होते तो गाँववाले ही इन्हें तोड़ लेते, इन्हें ऐसे ही पेड़ पर नहीं लगे रहने देते। लेकिन इन्हें देखकर ऐसा लगता है कि किसी ने भी इन फलों को हाथ तक नहीं लगाया है। हो सकता है कि ये फल खाने लायक न हों।'' उसकी ये बातें सुनकर पहले बंदर ने कहा—''कैसी बेकार की बातें कर रहे हो। मुझे तो इन फलों में कुछ बुरा नहीं दिख रहा। मैं तो इन्हें खाने जा रहा हूँ, तुम्हें साथ चलना है तो चलो।'' दूसरे बंदर ने उसे फिर से सावधान करते हुए कहा—''तुम्हें इस बारे में फिर से सोचकर निर्णय लेना चाहिए। मैं भोजन के लिए कुछ और ढूँढ़ता हूँ।'' पहला बंदर पेड़ पर चढ़कर फल खाने लगा, परंतु वे फल ही उसका अंतिम भोजन बन गए; क्योंकि वे फल जहरीले थे। दूसरा बंदर जब लौटा तो उसने अपने साथी बंदर को मरा हुआ पाया। इसीलिए कहा जाता है कि हर चमकने वाली चीज सोना नहीं हुआ करती।

▶युवाक्रांति वर्ष◀

प्रसन्नता एक मनोभाव है, एक सकारात्मक मनोदशा है। हमारी जैसी मन:स्थिति होती है, वैसे ही हमारे शरीर में भौतिक-रासायनिक परिवर्तन घटित होते हैं। हमारी मनोदशा जीवन की परिस्थितियों के प्रति जन्म लेने वाली प्रतिक्रिया से जुड़ी होती है और हमारी प्रसन्नता व खिन्नता भी इस बात पर निर्भर करती है कि प्रतिकूल और अनुकूल घटनाओं से हमारा मन कितना प्रभावित होता है। अधिकतर लोगों की खुशी ज्यादा देर तक टिक नहीं पाती। ऐसा इसलिए है; क्योंकि उनकी यह स्थिति बाहरी वस्तुओं, व्यक्तियों और परिस्थितियों के कारण होती है। सामान्यत: व्यक्ति की खुशी का आधार संपत्ति, शक्ति, प्रतिभा, योग्यता, उपलब्धि और समाज से प्राप्त हुई मान्यता, प्रतिष्ठा आदि ही होते हैं और इन सबके लिए दूसरों पर निर्भरता अनिवार्य है।

आमतौर पर व्यक्ति बाहरी परिस्थितियों में अपनी प्रसन्नता ढूँढ़ता है, जिन पर उसका नियंत्रण नहीं होता। परिस्थितियाँ उसे अपने प्रवाह में बहाती रहती हैं, अपने अनुसार चलाती रहती हैं। कभी सुखी करती हैं तो कभी दु:खी कर देती हैं, कभी उत्साह, उल्लास व रोमांच से भर देती हैं तो कभी निराशा, अवसाद देती हैं। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव का इस बारे में कहना था कि 'मनुष्य परिस्थितियों का दास नहीं, वरन उनका निर्माता, नियंत्रणकर्त्ता और स्वामी है।' वह चाहे तो अपनी मन:स्थिति सँवारकर अपनी परिस्थितियों को बदल सकता है, इसी कारण युगऋषि का कहना था—'मन:स्थिति बदलें तो परिस्थिति बदले'। मन:स्थिति में परिवर्तन लाकर हम अपनी परिस्थिति को बदल सकते हैं, अपनी मनोनुकूल प्रसन्नता को पुन: प्राप्त कर सकते हैं।

जब व्यक्ति को मिलने वाली प्रसन्नता, खुशी का कारण बाहरी होता है तो इसके साथ उसे यह डर भी हो जाता है कि कहीं उसकी इस खुशी, प्रसन्नता का आधार छिन न जाए। प्रसन्नता के साथ उसे यह आशंका सदैव सताती रहती है कि कहीं उससे कुछ गलती न हो जाए, जिससे उसकी खुशी उससे दूर चली जाए। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में कहा गया है—संशय करने वाले मनुष्यों को प्रसन्नता न तो इस लोक में मिलती है और न ही परलोक में (गीता ४/४०)। मनुष्य को जो भी प्राप्त होता है, उससे अधिक पाने की कामना उसके अंदर जन्मती है। ये लोभ, लालच और महत्त्वाकांक्षा ही उसके तनाव और भय का कारण बनती हैं, जिसके परिणामस्वरूप उसकी प्रसन्नता जल्द ही तिरोहित हो जाती है, विलीन हो जाती है।

बाहरी परिस्थितियों के कारण मिलने वाली प्रसन्नता का आधार अस्थायी होता है; क्योंकि परिस्थितियों का कोई स्थायी अस्तित्व नहीं होता, वे बदलती रहती हैं। लेकिन इनकी तुलना में आंतरिक प्रसन्नता स्थायी हो सकती है; क्योंकि यह प्रसन्नता बाहरी तत्त्वों पर निर्भर नहीं होती। इसलिए जो व्यक्ति अपने भीतर जितना गहराई में उतरते हैं, वे उतने ही अधिक सहज व प्रसन्न होते हैं। उनकी प्रसन्नता स्थायी तौर पर टिकी रहती है। यदि बाहरी तत्त्वों पर हमारी प्रसन्नता आधारित नहीं होती है, इन पर हमारी निर्भरता जितनी घटती जाती है, तो हमारी आंतरिक खुशी व प्रसन्नता भी उसी मात्रा में बढ़ती चली जाती हैं।

इस संसार में अधिकतर कार्य प्रसन्नताप्राप्ति के लिए ही किए जाते हैं। यदि व्यक्ति को अपने जीवन के किसी क्षेत्र में या किसी पड़ाव पर, मार्ग अथवा गंतव्य में सफलता न मिले अथवा न मिलने की संभावना हो, तो वह तत्काल उस मार्ग में आगे बढ़ना छोड़ देता है। अध्यात्म व भक्ति के जटिलतम मार्ग में भक्त अथवा साधक उत्साहपूर्वक इसलिए अग्रसर होते रहते हैं; क्योंकि उन्हें अंतत: उसमें प्रसन्नता प्राप्ति की प्रत्याशा रहती है। प्रसन्नता दूसरे अर्थों में आनंद का पर्याय है। जीवन के जिस क्षेत्र में आनंद प्राप्ति की कामना अथवा संभावना नहीं दिखती, लोग उस मार्ग का चयन नहीं करते। प्रसन्नता व्यक्ति में उत्साह जगाकर उसकी शक्तियों के पारिश्रमिक के रूप में प्राप्त होती है। सकारात्मक दृष्टि से किया गया कार्य अनिवार्यत: प्रसन्नता के ही दुर्ग में आश्रय पाता है।

प्रसिद्ध विचारक स्वेट मार्डेन ने कहा था कि 'प्रसन्नता परमात्मा की दी हुई औषधि या दवा के समान है। प्रसन्नता का अभाव जीवन को निराशा, पश्चात्ताप और पीड़ा में फँसाकर अभिशप्त जीवन जीने के लिए विवश करता है और प्रसन्नता की क्यारी में ही सद्‌गुणों की जड़ें—प्राण व ऊर्जा पाती हैं।' परमात्मा ने हर जीव को प्रसन्नतारूपी दुर्लभ गुण उपहार में दिया है, लेकिन मनुष्य अपने दुश्चिंतन, कुविचार और कुसंगति के दुष्प्रभाव में आकर उसे दु:ख व पश्चात्ताप में परिवर्तित कर देता है। ईश्वर ने संसार में किसी भी जीव को दु:खी व संतप्त नहीं पैदा किया है। उसकी परिस्थितियों के लिए उसके पूर्वकृत शुभ व अशुभकर्म जिम्मेदार हैं। इसी कारण प्रमुख चिंतक इपीकुरस का कथन है कि 'यदि कोई मनुष्य अप्रसन्न है, तो वह स्वयं उसी का दोष है।'

प्रसन्नता विशुद्ध रूप से एक ऐसी मनोदशा है, जो पूर्णतया आंतरिक मन:स्थिति पर निर्भर करती है। गरीबी व अभावग्रस्तता में भी मुस्कराने और कठिनाइयों के बीच भी जी खोलकर हँसने वाले अनेक व्यक्ति देखे जा सकते हैं और संपत्तिवान, साधनसंपन्न व्यक्ति भी अप्रसन्न व असंतुष्ट देखे जा सकते हैं। क्रुद्ध, चिंतित, असंतुष्ट और उद्विग्न बने रहना एक मानसिक दुर्बलता मात्र है, जो अंत:करण की दृष्टि से पिछड़े हुए लोगों में ही पाई जाती है। परिस्थितियों का नहीं, मनोभूमि का पिछड़ापन ही इस क्षुब्धता का कारण है। उदात्त और संतुलित दृष्टिकोण वाले व्यक्ति हर परिस्थिति में हँसते-मुस्कराते रहते हैं। वे जानते हैं कि मनुष्य जीवन सुविधाओं-असुविधाओं, अनुकूलताओं और प्रतिकूलताओं के ताने-बाने से बुना गया है।

इस संसार में अभी तक ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं जन्मा, जिसे केवल सुविधाएँ और अनुकूलताएँ ही मिली हों और उसे जीवन में कठिनाइयों का सामना न करना पड़ा हो। इसके प्रतिकूल जिसने अपने जीवन में अनुकूलताओं पर विचार करना आरंभ किया और अपनी तुलना पिछड़े हुए लोगों के साथ करना शरू किया, उसे लगेगा कि हम करोड़ों लोगों से अच्छे हैं। हमारे पास जो प्रसन्नता है, वह ईश्वरीय वरदान की तरह है।

जिन्हें शुभ देखने की आदत है, वे सर्वत्र आनंद बटोरते हैं। उनकी परिस्थितियाँ चाहे जैसी भी हों, उन्हें मंगलकारी ही लगती हैं; क्योंकि वे ईश्वर की अनुकंपा और लोगों की सद्भावना पर विश्वास रखते हैं। ऐसी दशा में उनके पास हँसने-मुस्कराने के लिए बहुत कुछ होता है। किंतु जिन्हें अशुभ देखने की आदत है, दूसरों के दोष, दुर्गुण और अपने अभाव, अवरोध खोजने की आदत है, ऐसे लोगों का जीवन क्षुब्ध ही रहता है तथा ऐसे लोग अपने जीवन में असमंजस, खिन्नता और उद्विग्नता को ही अनुभव करते रहते हैं। उनके चिंतन में रोष व असंतोष ही झलकता है। ऐसे व्यक्ति स्वयं दु:खी रहते हैं और अपने संपर्क में आने वाले दूसरे व्यक्तियों को भी दु:खी करते रहते हैं।

हमें क्रुद्ध, रुष्ट, असंतुष्ट और क्षुब्ध नहीं रहना चाहिए, क्योंकि ऐसे भाव जहाँ रहेंगे, वहीं विक्षोभ पैदा करेंगे और इनके कारण मानसिक संतुलन बिगड़ेगा। हँसते-मुस्कराते रहना, प्रसन्न रहना एक दैवीय गुण है, जिस पर अनेकों सुविधाएँ, ऐशोआराम आदि निछावर किए जा सकते हैं। प्रसन्नता के सुख की तुलना किसी से नहीं की जा सकती, यह हमारे मन को सुकून देती है, शरीर को स्वस्थ, निरोगी व सुंदर बनाती है और जीवन को अनमोल संतोष धन प्रदान करती है। ❑

स्मरण रखिए, आत्मविश्वासी के लिए स्वाधीन और स्वावलंबी होना आवश्यक है। जो कुछ करने से पहले, कुछ कहने से पहले दूसरों की प्रतिक्रिया का अनुमान ही लगाता रहता है, जिसे दूसरों की खुशामद का ध्यान रखना पड़ता है, दूसरों की नाराजगी या कोप से बचने या दया, वरदान, याचना का ध्यान रखना पड़ता है, वह कभी भी आत्मविश्वासी नहीं बन सकता। आत्मविश्वास का एक ही आधार है—बोलने में, काम करने में, अपना मार्ग चुनने में, अपना जीवन ढालने में अपनी अंतरात्मा का आदेश प्राप्त करें, अपने दिल और दिमाग के निर्णय पर पहुँचें और फिर जो सही हो उसे करें, उसे कहें।

—परमपूज्य गुरुदेव

परमपूज्य गुरुदेव के इस विशिष्ट उद्‌बोधन में वे प्रत्येक मनुष्य को उसको मिली एक अमूल्य संपदा से परिचित कराते हुए कहते हैं कि हममें से प्रत्येक व्यक्ति, मानव जीवन के रूप में एक अद्‌भुत गौरव-गरिमा को साथ लेकर के आया है। जो विभूतियाँ और जो सौभाग्य मनुष्य को प्राप्त हैं, वे किसी अन्य प्राणी को प्राप्त नहीं हैं और यदि इस सुरदुर्लभ मनुष्य जीवन का उपयोग हम मात्र पेट भरने के लिए और परिवार बड़ा करने के लिए करते हैं तो इससे बढ़कर दुर्भाग्य दूसरा नहीं हो सकता है। पूज्य गुरुदेव कहते हैं कि हमें अपनी आत्मसमीक्षा करते हुए, हमारे द्वारा आज किए जा रहे कर्मों के कल पर पड़ने वाले प्रभावों का मूल्यांकन करते हुए अपना जीवन जीना चाहिए, ताकि हम भगवान के दरबार में सीना तानकर खड़े हो सकें और स्वयं को मिले इस मानव जीवन के सौभाग्य के साथ न्याय कर सकें। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.......

मानव जीवन—सर्वोपरि सौभाग्य

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥

देवियो, भाइयो! जीवन कितना महत्त्वपूर्ण है? यह आपका सबसे बड़ा सौभाग्य है। इस समय जो सौभाग्य आपको मिला हुआ है, इस पर कभी आप गौर करें तो आप इस बात पर विचार मत करिए कि आप किस बिरादरी में पैदा हुए हैं। आपका खुद का मकान है कि नहीं? आप कहाँ तक पढ़े हुए हैं? आपके पास कितने कुटुंबी हैं? आपको सफलता मिली कि नहीं मिली। आप कैसी डिवीजन लाए? वगैरह-वगैरह। आपके पास जो सामान है, उस पर आप विचार मत कीजिए। फिर क्या करें? आपको एक ऐसी बड़ी चीज मिली हुई है, जिस नियामत पर आप बराबर गर्व अनुभव कर सकते हैं। वह क्या है? वह है—इनसानी जिंदगी। आदमी का जन्म इतना बड़ा सौभाग्य है कि आप इसकी कल्पना नहीं कर सकते।

मित्रो! इस जीवन का कितना महत्त्व है, अगर आपकी जिंदगी छिन जाए, उस समय आपको यह पता चले कि हमको कितनी बड़ी नियामत मिली हुई थी। इसकी अपेक्षा यह ज्यादा अच्छा है कि आप समय रहते इस बात का अंदाज लगा लें कि हमको ऐसा बहुमूल्य उपहार मिला हुआ है, जिसके लिए समूचे संसार के प्रत्येक प्राणी को तरसना पड़ता है। आदमी को बोलने वाली जिंदगी, सोचने वाली जिंदगी, पढ़ने-लिखने वाली जिंदगी, जीविका के लिए कोई एक सूत्र-साधन, खाने-पीने का नियत समय, वस्तुओं के लिए सुव्यवस्था, सोने-जागने का क्रम, पहनने के लिए वस्त्र, रहने के लिए मित्रमंडली, जीविकोपार्जन के लिए कोई नियत स्थान वगैरह-वगैरह........।

इसके हिसाब से अगर आप देखें तो यह मालूम पड़ेगा कि दूसरे प्राणियों की तुलना में आपके और दूसरे प्राणियों के बीच में जमीन-आसमान का फरक है। आपको जो सुविधाएँ मिली हुई हैं, वे दूसरे प्राणियों को कहाँ मिली हुई हैं? बताइए न, मनुष्य के अलावा कपड़े कौन

पहनता है? शादी-विवाह किसके होते हैं? कुटुंब बनाकर के कौन रहता है? दवा-दारू का इंतजाम किसके लिए है? बोलना किसको आता है? किताबें कौन पढ़ सकता है? वगैरह। आपको इतनी सुविधाएँ मिली हुई हैं, आप कभी एकांत में बैठकर के विचार करें तो मालूम पड़ेगा कि भगवान के पास में जो कुछ भी सबसे कीमती चीज थी, उसने आपके सुपुर्द कर दी।

भगवान के खजाने की बड़ी संपदा—मनुष्य जीवन

मित्रो! अगर आपको कभी भगवान के खजाने को देखने का अवसर मिले तो आप यह तलाश करना कि सबसे बेहतरीन चीज प्राणियों को देने के लिए उनके पास क्या हो सकती थी? तब आपको एक ही बात का पता चलेगा कि भगवान के पास सबसे कीमती दौलत, सबसे कीमती नियामत, सबसे कीमती संपदा, अगर कोई है तो वह है—मनुष्य की जिंदगी। मनुष्य की जिंदगी जिसको मिल गई, समझना चाहिए भगवान का अनुग्रह पूर्ण हो गया। इससे ज्यादा भगवान के पास देने के लिए कोई ऐसी चीज नहीं है, जो किसी प्राणी को दें और निहाल कर दें। आप निहाल हो गए हैं, इस बात को आप समझिए। कल्पना कीजिए मौत आई और आपके हाथ से जिंदगी छीन ली गई। छीनी हुई जिंदगी पर आप गौर कीजिए कि वह कितनी कीमती थी, जो आपको अब दोबारा नहीं मिलने वाली है। अब आपको दूसरी योनियों में जाना है। गधे में जाना है, घोड़े में जाना है, बंदर में जाना है, कबूतर में जाना है, दूसरी—चिड़ियाँ, मेंढ़क आदि में जाना है।

मित्रो! तब आप जरा अंदाज लगाइए आपके हाथ में कितना मौका मिला हुआ था, जिसे आपने गँवा दिया। आपने कभी यह कोशिश नहीं की कि इसका महत्त्व समझें और महत्त्व समझने के साथ-साथ आप इसको ठीक तरह से इस्तेमाल करने के लिए तैयारियाँ करें। आप इसकी तैयारी कीजिए, महत्त्व समझिए, आप इसको ठीक तरीके से उपयोग करने की तैयारी करिए। इसके लिए क्या तैयारी करनी पड़ेगी? एक तैयारी यह करनी पड़ेगी कि आपको नए ढंग से अपनी जिंदगी पर विचार करना शुरू करना होगा।

क्या शुरू करें? आप यह मानकर चलिए कि जिंदगी एक बहुत लंबी कड़ी है। एक बहुत लंबी वाली शृंखला है, जिसमें आपको लाखों जन्मों तक जिंदा रहना था। आपके लिए एक ही मौका ऐसा है, जो मनुष्य के जीवन के रूप में आपको मिला हुआ है। आपको जो मनुष्य की जिंदगी के रूप में अवसर मिला हुआ है, आप उसके साथ जुड़े हुए भावी जीवन की संभावनाओं के बारे में विचार कीजिए।

जीवन का सदुपयोग कैसे करें?

मित्रो! आज हर आदमी जो काम करता है, कल का विचार करके ही तो करता है। आज आप जो काम कर रहे हैं, कल के ख्याल से कर रहे हैं। कल क्या करना पड़ेगा? आज आपने जो नौकरी या खेती-बारी की है उसका मतलब यही तो है कि आपको कल का गुजारा करने के लिए ठीक मिलेगा। मकान आप किसलिए बनाते हैं? आज तो आप धर्मशाला में भी रह सकते थे। होटल में भी रह सकते थे, परंतु यही तो विचार करते हैं कि कल हम रहेंगे तो कहाँ रहेंगे? बुढ़ापे में जाएँगे तो कहाँ रहेंगे? हमारा कुटुंब कहाँ रहेगा?

इसलिए विचार करते हैं—कल की संभावनाओं के लिए, आज की व्यवस्था बनाना हरेक समझदार आदमी का काम है। आप एक लंबी वाली जिंदगी जी रहे हैं। अगर आप लंबी वाली जिंदगी जी रहे हैं तो आपको यह विचार करना पड़ेगा कि आपका कल किस तरीके से शानदार हो। कल के शानदार होने के लिए आज आपको क्या करना पड़ेगा? एक ही बात करनी पड़ेगी कि आप अपने प्रत्येक क्रियाकलाप में इस बात का समावेश करें कि हमारा कल—भविष्य किस तरीके से उज्ज्वल रहे।

मित्रो! हम और आपमें से अधिकांश व्यक्ति यही गलती करते हैं कि कल की बात पर विचार नहीं करते, केवल आज की बात पर विचार करते हैं। कल क्या परिणाम निकलेगा, इस बात को हम भूल जाते हैं। आज हमको किन बातों में फायदा है, बस, इतनी ही बात पर हमारी दृष्टि सीमित रहती है और आज हमको जो फायदेमंद मालूम पड़ता है, उसी को करने पर आमादा हो जाते हैं, भले ही उसको करने से हमारा कल खराब होता हो।

क्या करना चाहिए? करना यह चाहिए कि कल के परिणामों पर हम ज्यादा विचार करें और आज की गतिविधियों का निर्धारण हम इस तरीके से करें, जिससे हमारा कल बहुत अच्छा बनता हो, शानदार बनता हो। अच्छा बनता हो—उसके लिए हम कोशिश करें, तो हम एक ऐसी रीति-नीति को अपनाने में समर्थ बन सकते हैं, जो हमारे लिए हर तरीके से सुखदायक-शांतिदायक बन सकती है।

आने वाले कल को ध्यान में रखकर जिएँ जिंदगी

साथियो! आपको दूसरे आदमियों पर गौर करना चाहिए, जो आदमी तुरंत फायदा उठाने के लिए कोशिश करते हैं आपने देखा नहीं वे किस तरीके से हैरान होते हैं और किस तरीके से अपनी जिंदगी को तबाह कर लेते हैं। अपराधियों को आप जानते हैं ना? शराबियों को आप जानते हैं ना? आलसियों को आप जानते हैं ना? रिश्वतखोरों, जमाखोरों और भ्रष्टाचारियों को आप जानते हैं ना? वे कौन हैं? ये सब वे आदमी हैं, जो आज की सुख-सुविधाओं को ध्यान देते हैं और यह भूल जाते हैं कि हमारा भविष्य क्या होना है। शराबी इस समय के मजे को देखता है और यह देखता है कि इस समय हमको कैसा जायका आ रहा है, कैसा आनंद आ रहा है? वह इस बात को भूल जाता है कि कल हमारा लिवर खराब होने वाला है, दिमाग खराब होने वाला है, जिंदगी में कमी होने वाली है। हमारी अक्ल खराब होने वाली है। हमारे कुटुंब की तबाही होने वाली है। हमारी बदनामी होने वाली है। यह कल तो होने वाली है ना? कल का कोई ख्याल ही नहीं है।

मित्रो! जिसको कल का ख्याल नहीं आता, उसको शराब पीने में कोई एतराज नहीं है, लेकिन जिसको कल का ख्याल है; अपने शरीर का भी ख्याल है; अपनी बदनामी का ख्याल है और अपनी आमदनी का ख्याल है; जिसको अपनी घर-गृहस्थी की जिम्मेदारी का ख्याल है, उसे जैसे ही यह ख्याल आएगा, तो वह शराब पीने से एतराज करने लगेगा और शराब पीना छोड़ देगा। जिस व्यक्ति में दूरदर्शिता की कमी है, वह सिर्फ आज की बात पर विचार करता है। अपराधियों के बारे में यही बात है, शराबियों के बारे में भी यही बात है। जुआरियों को आपने देखा है ना? चोरों को आपने देखा है ना? इस समय फायदा उठा लेते हैं।

अरे भाई! इस समय तो फायदा उठा लेते हो, पर भविष्य तुम्हारा क्या बनेगा? दूसरा आदमी तुम्हारी सहायता क्यों करेगा? दूसरा आदमी तुम्हें अपने पास क्यों बैठने देगा? जहाँ कहीं भी किसी का सहयोग माँगने जाएँगे वह तुम्हारे बारे में यही ख्याल तो करेगा न कि चोर है और उचक्का है। हमारे पास रहेगा तो हमको हैरान करेगा, किसी-न-किसी तरीके से तंग करेगा। इसलिए अच्छा होते हुए भी, कुटुंबी होते हुए भी, मित्र होते हुए भी, अपने खानदान और परिवार का सदस्य होते हुए भी, हर आदमी यही चाहता है कि यह किसी तरीके से काला मुँह करे और हमसे दूर चला जाए।

मित्रो? क्यों? क्या वजह हुई? क्राइम। क्राइम— अपराध आदमी के व्यक्तित्व को खतम कर देता है। आमदनी क्या मिली, क्या नहीं मिली—आपसे मैं यह नहीं कहता। आपने किसी की जेब काटकर क्या कमा लिया, चोरी-बेईमानी से क्या कमा लिया, यह आपकी मरजी के ऊपर है, लेकिन आपने अपना भविष्य जरूर खराब कर लिया। अब आपको सहयोग की कोई गुंजाइश नहीं है। जब लोगों को यह मालूम पड़ेगा कि आप बुरे काम करने वालों में से हैं; क्योंकि अपराध छिपता तो है नहीं, तब फिर आप विश्वास रखिए, न आपके पास अच्छे ग्राहक आ सकते हैं, न कोई आपको उधार देने को रजामंद हो सकता है और न आपका कोई मुसीबत में सहकारी हो सकता है। अपराध का रास्ता अख्तियार करने के बाद में आपने कमाया होगा, मैं नहीं कहता, लेकिन आपने भविष्य अपना कितना खराब बना लिया, आप जानते नहीं हैं।

आप किसान को जानते हैं ना, विद्यार्थी को जानते हैं ना, माली को जानते हैं ना, कलाकार को जानते हैं ना। ये सब वे आदमी हैं, जिनको कल का ख्याल रहता है। आज उनको नुकसान पड़ता है तो खुशी-खुशी इस नुकसान को उठाने के लिए तैयार रहते हैं। किसान नुकसान उठाने को तैयार रहता है। आज बीज बो रहा है। आज मेहनत कर रहा है। आज खाद-पानी सिर पर ढोकर के खेत में लगा रहा है। नुकसान के अलावा यह और क्या है, जरा बताइए तो सही? लेकिन उसको ख्याल है कि इससे कल हमको अच्छी फसल मिल सकती है और हम अच्छा फायदा उठाएँगे। इसलिए आज की तबाही, आज का नुकसान, आज की मेहनत को सही मानता हैं, भले ही इसका कोई मुनासिब फायदा न मिलता हो, तो भी बराबर मेहनत करने के लिए तैयार रहता है।

अदूरदर्शिता के दुष्परिणाम

मित्रो! आप ऐसा नहीं कर पाएँगे क्या? आपको करना चाहिए। विद्यार्थी को आपने देखा है न? विद्यार्थी किस तरीके से किताब पढ़ने में लगा रहता है, रात को जागता रहता है, फीस भी दाखिल करता है। स्कूल भी टाइम पर जा पहुँचता है। दूसरी ओर आप उस बच्चे को देखिए, जो लावारिसों के तरीके से घूमता रहता है। घर से पैसा ले जाता है, फीस दाखिल करने के लिए। घर से

पैसा ले जाता है, किताबें खरीदने के लिए। लेकिन न तो वह किताबें खरीदता है, न फीस दाखिल करता है, सिर्फ आवारागर्दी में इधर-से-उधर घूमता रहता है। उसने आज का जायका उठा लिया ना? हाँ, लेकिन आज का जायका उठाकर के उसने क्या फायदा प्राप्त किया। कल का भविष्य खराब कर लिया ना। उस बेचारे का कल क्या होने वाला है? बिना पढ़ा रह जाएगा, हर साल फेल होता रहेगा, बच्चों में बेवकूफ और बुद्धू समझा जाता रहेगा। सारे घरवाले उसे हिकारत की दृष्टि से देखते रहेंगे। अंततः अपनी खराब जिंदगी को लेकर के किन्हीं ऐसे बुरे लोगों की सोहबत में जा फँसेगा, जहाँ कि उसका भविष्य अंधकारमय होता हो।

मित्रो! यह सब कैसे हो गया? अदूरदर्शिता के कारण। अगर उस बच्चे में दूरदर्शिता रही होती, तो उसने ऐसे कदम न उठाए होते। तब उसने समझदार बच्चों के तरीके से दिन-रात मेहनत की होती। अच्छा डिवीजन ले आया होता। अच्छा डिवीजन ला करके छात्रवृत्ति प्राप्त कर ली होती और छात्रवृत्ति प्राप्त करने के अलावा कोई ऐसा पद प्राप्त कर लिया होता, जिससे कि सारी जिंदगी खुशहाली से बीत जाती। अदूरदर्शिता ही तो है ना, जिसकी वजह से बच्चे की जिंदगी खराब हो गई। अदूरदर्शिता ही तो है ना, जिसकी वजह से शराबी तबाह हो गया। अदूरदर्शिता ही तो है न जिसकी वजह से अपराधी ऐसा हो गया। और वह दूरदर्शिता ही है, जिसकी वजह से पहलवान, पहलवान बन गया। जिसकी वजह से विद्वान, विद्वान बन गया। जिसकी वजह से धनवान, धनवान बन गया। उन लोगों ने कल के लिए आज अपने आप के मन को मारा, अपने आप को रोका। अपने आप को एक खास मकसद में लगाए रखा और पूरी तरह से जिम्मेदारी के साथ किसी खास काम में अपने आप को भुला दिया।

मित्रो! अपने आप को किसी खास मकसद के लिए भुला देने वाले वे आदमी जो भविष्य के बारे में विचार करते हैं, बड़े समझदार मालूम पड़ते हैं। आपको भविष्य के बारे में विचार करना चाहिए। आपकी जिंदगी, आपका बुढ़ापा किस तरीके से शानदार बीते इसके लिए आपको जवानी की हिफाजत करनी चाहिए। आपके घर की आर्थिक स्थिति भविष्य में डगमगाने न पाए इसके लिए आज से ही आपको अपनी किफायतशारी पर गौर करना चाहिए और अपने घर के रहन-सहन के बारे में, घर की व्यवस्था के बारे में विचार करना चाहिए। बच्चे भविष्य में आपकी इज्जत करें, इसलिए आज आपको अपने तौर-तरीके ऐसे बनाकर रखने चाहिए जिससे कि बड़े होने पर जब आप कमजोर और असमर्थ हो जाएँगे, बुड्ढे हो जाएँगे, तब आपके ये बच्चे जो आज आपको बुरे काम करते हुए देखते हैं, तब आपको धिक्कारने न पाएँ। इसलिए आप अपने ढाँचे को अभी से क्यों न बदल लें?

भगवान के दरबार में शान से हों उपस्थित

मित्रो! सबसे बड़ी बात यह है कि आपको भगवान के दरबार में पेश होना पड़ेगा। इस काम से आपका बचाव नहीं हो सकता। आप जिस दिन जन्मे थे, उस समय भगवान ने आपको बहुत कीमती शरीर दिया था और इस उम्मीद से दिया था कि आप इसका ठीक इस्तेमाल करेंगे और अपने भविष्य को उज्ज्वल बना लेंगे और उसकी दुनिया को शानदार बनाने के लिए उसकी सेवा करने में समर्थ हो सकेंगे। आप उसके विश्व उद्यान को सुरम्य और सुसंस्कृत बनाने में हिस्सा बँटाएँगे। भगवान ने आपको दिया है और आप भगवान की दुनिया को देंगे। इस ख्याल से उसने आपको जन्म दिया था, लेकिन जब आप धीरे-धीरे मौत के नजदीक जा रहे हैं और आपको भगवान के दरबार में पेश होने का मौका मिलने वाला है, तब आप जरा विचार तो कीजिए कि आप उसे क्या जवाब देंगे। आप यह विचार मत कीजिए कि भगवान जी आपसे यह पूछने वाले हैं कि आपने कितनी माला का जप किया था? किन-किन तीर्थों की यात्रा की थी। क्या-क्या कर्मकांड कराए थे? भगवान से इनका कोई ताल्लुक नहीं है। यह सब आपकी मरजी के ऊपर है। यह अपने मन की हिफाजत के लिए और मन को ठीक रखने के लिए है।

मित्रो! भगवान ने तो एक चीज आपको अमानत में दी थी और वह थी—जिंदगी, और वह सिर्फ आपसे जिंदगी के बारे में सवाल करने वाला है। जब आप जाएँगे तो आपको एक प्रश्न का उत्तर देना पड़ेगा। और एक ही प्रश्न पूछा जाएगा। कौन-सा? यह कि आपको जो बेशकीमती जिंदगी मिली थी, वह आपने कहाँ खरच कर डाली? किन-किन कामों में खरच कर डाली। आप अभी से इसका जवाब तैयार कीजिए।

जीवन को गँवाएँ नहीं, उपयोगी बनाएँ

आपका यह जवाब माकूल नहीं है कि हमारे पास पेट भरने के लिए, कमाने के लिए इतना काम था। कुटुंब

को पालने के लिए इतना काम था। इसलिए इस काम में हम सारी जिंदगी लगे रहे। ऐसा मत कहिए। आपके हाथ बहुत बड़े हैं और आपकी अक्ल बहुत बड़ी है और आपको कमाने के लिए बहुत से साधन समाज में मिले हुए हैं। आपकी आवश्यकताएँ क्या हैं, जरा बताना? मुट्ठी भर आपकी आवश्यकताएँ हैं। चार रोटी आप खाते हैं। चार रोटी तो आप दो घंटे की कमाई में खा सकते हैं। आप तीन गज कपड़ा पहनते हैं ना? इसकी कितनी कीमत होती है? महीने भर में कितना खरच करते हैं? आपके व्यक्तिगत खरच और आवश्यकताएँ बहुत कम हैं।

साथियो! आप फजूलखरची में उड़ा डालें तो इसके लिए कोई क्या कर सकता है। फजूलखरची के लिए तो कोई सीमा नहीं है। कोई मर्यादा नहीं है। आप चाहे जितना खरच कर डालिए। लेकिन आपकी वास्तविक आवश्यकताएँ बहुत कम हैं। और कुटुंब? कुटुंब को अगर आपने स्वावलंबी बनाने और संस्कारी बनाने तक का अपना उद्देश्य सीमित रखा हो तो आपको कुटुंब पालन करने में जरा भी दिक्कत नहीं पड़नी चाहिए। कुटुंब में ढेरों आदमी ऐसे होते हैं, जो अपने पैरों पर खड़े हो सकते हैं। मसलन आपकी धर्मपत्नी हैं ना? स्वास्थ्य उनका अच्छा है ना? तो उन्हें सारे दिन, खाना बनाने में क्यों लगाए रखें, खाना आप सब मिलकर थोड़े समय में पका सकते हैं। बाकी समय में आप इस तरीके से उनको शिक्षित और संस्कारित कर सकते हैं, जिससे कि वे अपने पैरों पर खड़ी हो सकें। घर के लिए कोई आर्थिक कमाई न कर सकती हों तो बचत तो कर ही सकती हैं।

मित्रो! खाना पकाना भी तो एक कला है, आमदनी है। कपड़े धोना और सिलाई करना भी तो एक आमदनी है। आपके घर में साग-भाजी उगा देना भी तो एक आमदनी है। यह सब स्वावलंबन हुआ ना? स्वावलंबन की दृष्टि से यदि आप घर के कई लोगों को इस लायक बना दें और उनसे भी कुछ काम करने की बात कहें। एक आदमी कमाए और सब बैठकर खाएँ यह बुरी बात है। हर आदमी को आप स्वावलंबन क्यों नहीं सिखा सकते? अगर आप इस तरीके से स्वावलंबन सिखाएँ तब? तब आपके ऊपर से वे बातें खतम हो जाती हैं।

अभी तो आपको परिवार का भरण-पोषण इसलिए भारी पड़ रहा है कि आप अकेले कमाकर और सबको बैठाकर खिलाना चाहते हैं। सबको निकम्मा बनाना चाहते हैं। यदि सारे कुटुंबियों को, छोटे बच्चों को छोड़कर जो समर्थ व्यक्ति हैं, उन्हें किसी तरीके से किसी-न-किसी काम में लगाए रखने की बात को यदि आप विचार कर लें, तो आपको कुटुंब पालन में क्या दिक्कत पड़ सकती है? कुटुंब का परिपालन आपको भारी क्यों पड़ना चाहिए? आपको पेट भरने में दिक्कत क्यों होनी चाहिए?

मित्रो! अगर आप औसत भारतीय नागरिक के तरीके से जिंदगी जिएँ और किफायतशारी से रहें तो आप यकीन रखिए थोड़े में ही आप गुजारा कर सकते हैं और बड़ी आसानी से सारी मुसीबतों से आपका बचाव होना संभव है। भगवान का काम करने के लिए आपको ढेरों-का-ढेरों समय मिलना चाहिए। आपकी अगर कोई पुरानी स्थायी आमदनी नहीं है तो भी आठ घंटे की मेहनत और मशक्कत करने के बाद में आपका गुजारा भली भाँति से हो जाना चाहिए। काम करने के घंटे आठ घंटे से ज्यादा नहीं होने चाहिए। आठ घंटा अंतर्राष्ट्रीय मानक के अनुसार शारीरिक श्रम आजीविका के लिए निर्धारित है। हर आदमी मेहनत और ईमानदारी से काम करे तो आठ घंटे में गुजारा कर सकता है। फिर इसके बाद सात घंटे सोने के मान लीजिए। सात घंटे से ज्यादा सोने की बच्चों को भी जरूरत नहीं पड़ती। सात घंटे तो आपके लिए काफी होने चाहिए, यदि आप समय खराब न करें तब।

इस तरह सात घंटे सोने के लिए और आठ घंटे काम करने के लिए कुल पंद्रह घंटे हुए, पाँच घंटे आप फालतू कामों के लिए रखिए। शौच-स्नान और खाने में कितना समय लगता है। एक घंटा सवेरे का मान लीजिए, एक घंटा शाम का मान लीजिए। यह तो दैनिक जरूरतों के काम हुए, और कोई हो तो जरा बताना। इस तरीके से ५ घंटे दैनिक कार्यों में लगाने के बाद में आपको कुल मिला करके २० घंटे अपने दैनिक कामों में और पारिवारिक कामों में खरच करने के लिए काफी होने चाहिए। इसके बाद में जो चार घंटे बचते हैं उनमें आप भगवान के कामों की कर सकते हैं। जिससे कि आपकी जिंदगी सार्थक मानी जा सके। जिससे आप भगवान के दरबार में जब कभी जाएँ तो सीना तानकर यह कह सकें कि हमने अपनी आत्मा का कल्याण करने के लिए और अपने परिवार का स्तर बढ़ाने के लिए और

समाज में सत्प्रवृत्तियों का संवर्द्धन करने के लिए कई मूल्यवान काम किए हैं।

आप ऐसा कीजिए। भगवान के दरबार में जाने की तैयारी कीजिए। अगर आप उनको सही जवाब देने में समर्थ हो गए, तो आप विश्वास रखिए अभी तो आपको सामान्य प्राणियों से मनुष्य का दरजा मिला है, कल आपको महामानव का मिल सकता है, ऋषियों का दरजा मिल सकता है, देवात्माओं का दरजा मिल सकता है।

अभी तो आप मानवीय गरिमा से लाभान्वित हुए हैं, भविष्य में आपको स्वर्गीय जिंदगी जीने का मौका मिल सकता है। आप जीवनमुक्तों में गिने जा सकते हैं। आप सारे संसार में भगवान के उत्तराधिकारी और युवराज कहलाने की स्थिति में पहुँच सकते हैं। कब पहुँच सकते हैं—जब आप जीवन का ठीक से उपयोग करना सीख पाएँ तब। अतः आप जिंदगी के साथ खिलवाड़ मत कीजिए। जिंदगी को महत्त्वहीन मत मानिए। जिंदगी को खंडित मत कीजिए। जिंदगी में आज के ही लाभों पर विचार मत कीजिए, वरन भविष्य का भी विचार कीजिए और ऐसी नीति अख्तियार कीजिए, जिससे कि न केवल आज का दिन शानदार बन सके, बल्कि भविष्य को उज्ज्वल बनाने का भी एक अच्छा-खासा द्वार खुल सके। आप ऐसा कीजिए, जीवन का महत्त्व समझिए, जीवन का सदुपयोग कीजिए और भविष्य को उज्ज्वल, सुखमय और आनंदमय बनाइए।

आज की बात समाप्त

॥ ॐ शांतिः ॥

❑

बंगाल के एक गाँव में एक बालक प्रतिदिन समय पर पाठशाला जाता था, परंतु उसकी पढ़ाई में विशेष रुचि नहीं थी। उसके माता-पिता चाहते थे कि वह पढ़-लिखकर विद्वान बने, परंतु उसे जो कुछ पढ़ाया जाता था, वह उसे शीघ्र ही भूल जाता था। इस कारण उसे अपने पिता व गुरु से डाँट पड़ती रहती थी। रोज पड़ने वाली डाँट से वह एक दिन बहुत दुःखी हो गया और उसने सोचा कि उसे अपने जीवन का अंत कर देना चाहिए। यह सोच वह गाँव से दूर एक कुएँ के पास गया। उस कुएँ से एक महात्मा जल निकालकर अपनी प्यास बुझा रहे थे। उन्होंने उसे परेशान देख उससे उसकी व्यथा का कारण पूछा। उसने उन महात्मा को पूरी बात बता दी।

महात्मा उस बालक को कुएँ के समीप ले गए और उसके चबूतरे पर पड़े गड्ढों के निशान दिखाते हुए बोले—"बेटा! पत्थर का चबूतरा, मिट्टी के घड़े से अधिक कड़ा होता है, फिर भी उसके रखने के निशान यहाँ बन गए हैं और ऐसे ही चबूतरे के किनारे पर रस्सी के घिसने के निशान हैं। ऐसा कैसे हुआ होगा?" बालक बोला—"प्रतिदिन के घर्षण से ऐसा हुआ होगा?" महात्मा पुनः बोले—"बेटा! यदि प्रतिदिन के घर्षण से एक कोमल वस्तु इतनी कड़ी वस्तु को काट सकती है तो क्या प्रतिदिन का किया अभ्यास तुम्हें विद्वान नहीं बना सकता? जीवन को वरदान समझो, अभिशाप नहीं।" उन महात्मा के वचन सुनकर उस बालक में एक नई उमंग पैदा हो गई और वह नए उत्साह के साथ अध्ययन में रत हो गया। वही बालक आगे चलकर बंगाल का प्रसिद्ध विद्वान भूपदेव शास्त्री बना।

▶युवाक्रांति वर्ष◀

विश्वविद्यालय परिसर से –१४१

आत्मीयता से सिक्त हुआ विश्वविद्यालय

देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर की आध्यात्मिक जीवनशैली नित–नूतन आदर्शों का सृजन करती है। इस परिसर में आचार्य एवं विद्यार्थी मिलकर निरंतर उन आदर्शों की मिसाल पेश करते रहे हैं, जिनकी आवश्यकता न केवल आधुनिक शिक्षा जगत अपितु समूचे समाज और विश्व को है। आदर्शों की इसी सृजनकारी चेतना की दीपशिखा को उन्नत बनाए रखते हुए परिसर के आचार्यों, विद्यार्थियों ने विगत दिनों आत्मीयता विस्तार कार्यक्रम की शुरुआत कर छात्रावास जीवन के लिए एक नया आदर्श प्रस्तुत किया।

इस आत्मीयता विस्तार के कार्यक्रम को एक पर्व का रूप देते हुए इसका आयोजन छात्रावास में किया गया, जिसमें छात्रावास के अधिकारियों, सहयोगी सदस्यों व सभी विद्यार्थियों ने भागीदारी की। कार्यक्रम का शुभारंभ प्रातः यज्ञ के साथ किया गया। इस आयोजन में आत्मीयता विस्तार की अनेक गतिविधियों को सम्मिलित करते हुए शाम को इसे विशेष रूप दिया गया। शाम के समय छात्रों ने ही छात्रावास की पाकशाला में विभिन्न प्रकार के व्यंजनों को तैयार कर विशिष्ट भोज का आयोजन किया। सायंकालीन कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में विश्वविद्यालय के कुलपति श्री शरद पारधी जी एवं प्रतिकुलपति जी ने भागीदारी की।

कुलपति जी ने सभी छात्रों को इस भव्य आयोजन के लिए बधाई व शुभकामनाएँ प्रदान कीं। प्रतिकुलपति जी ने छात्रों का उत्साहवर्द्धन करते हुए समय–समय पर ऐसे आयोजन करते रहने की प्रेरणा दी। उन्होंने कहा कि इस तरह के कार्यक्रमों से छात्रों में एकरूपता की भावना बढ़ती है, कार्य के प्रति रुचि उत्पन्न होती है। इस तरह के कार्यक्रम विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। कार्यक्रम समापन के अवसर पर छात्रावास अधीक्षक डॉ० शिवनारायण प्रसाद ने सभी छात्रों को बधाई देते हुए मुख्य अतिथियों का धन्यवाद ज्ञापित किया और कहा कि ऐसे आयोजनों से छात्रों में आपसी स्नेह, सामंजस्य और सहयोग की प्रवृत्ति विकसित होती है, साथ ही छात्रावास में अनुशासन बनाए रखने में भी ऐसे कार्यक्रम सहयोगी साबित होंगे।

परिसर में विशिष्ट आयोजनों के क्रम को बनाए रखते हुए नवंबर माह में विश्वविद्यालय के सभी विभागों द्वारा स्वच्छता अभियान पखवाड़ा मनाया गया। ऐसे आयोजनों के प्रति प्रेरणा प्रदान करते हुए कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी द्वारा ध्यान की कक्षा में कहा गया कि बाहरी स्वच्छता के साथ–साथ आंतरिक स्वच्छता की भी आवश्यकता है। आंतरिक स्वच्छता की ज्योति जलते ही बाहरी स्वच्छता स्वतः सामने आ जाएगी। इस स्वच्छता पखवाड़े में सभी विभागों द्वारा सफाई से जुड़े अनेक प्रकार के सृजनात्मक कार्यक्रम संपन्न किए गए। इस अभियान में विश्वविद्यालय परिसर व चुने हुए क्षेत्रों में सफाई करते हुए जनसामान्य को स्वच्छता के प्रति जागरूक बनाने का कार्य भी किया गया।

विश्वविद्यालय की शैक्षणिक गतिविधियों के क्रम में विश्व स्वास्थ्य दिवस के उपलक्ष्य में मनोविज्ञान विभाग द्वारा काउन्सिलिंग और साइकोथेरेपी विषय पर कार्यशाला का आयोजन किया गया। इसमें विद्यार्थियों को काउन्सिलिंग के साथ–साथ व्यवहार एवं व्यक्तित्व की भी जानकारी दी गई। कार्यशाला में विषय–विशेषज्ञ के रूप में लखनऊ से पधारे डॉ० पी० के० खत्री ने मनोरोगों में मनोचिकित्सा की विभिन्न तकनीकों को कारगर बताते हुए विद्यार्थियों को कई प्रकार के प्रयोगात्मक प्रशिक्षण भी कराए। इसी क्रम में तनाव मुक्ति केंद्र, हरिद्वार से पधारे डॉ० मुकुल अग्रवाल ने विद्यार्थियों को काउन्सिलिंग के विभिन्न आयामों से परिचित कराया।

इस अवसर पर मनोविज्ञान विषय के विद्यार्थियों द्वारा काउन्सिलिंग तकनीक का प्रयोग विश्वविद्यालय के अन्य विषयों के विद्यार्थियों पर किया गया। कार्यशाला के समापन पर विभाग के मुख्य समन्वयक डॉ० संतोष विश्वकर्मा ने कहा कि आधुनिक मनोविज्ञान केवल मन तक ही सीमित है, जबकि भारतीय मनोविज्ञान की जड़ें कहीं अधिक गहरी हैं। ये व्यक्ति को आंतरिक एवं बाह्य

▶युवाक्रांति वर्ष◀

दोनों तरह से प्रभावित करती हैं। अतः मनोचिकित्सा की दृष्टि से भारतीय मनोविज्ञान को अलग नजरिए से देखने की आवश्यकता है। साथ ही डॉ० विश्वकर्मा ने कार्यशाला की सफलता पर सभी आगंतुकों एवं सहभागियों का आभार व्यक्त किया।

परिसर में भारतीय स्काउट गाइड का पाँच दिवसीय शिविर का आयोजन किया गया। इस अवसर पर विश्वविद्यालय के कुलपति श्री शरद पारधी जी ने कहा कि गुणों की जानकारी प्राप्त कर लेना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उन्हें जीवन में धारण कर परिवार व समाज को लाभ देने का नाम रोवर/रेन्जर है। शिविर के समापन अवसर पर संबोधित करते हुए विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने कहा कि स्काउटिंग के माध्यम से युवाओं को स्वयं के कौशल को उभारने व समाज तथा प्रकृति को नजदीक से जानने का अवसर मिलता है। उन्होंने देश भर से आए प्रतिभागियों को संबोधित करते हुए कहा कि सभी कर्मठ एवं लगनशील युवाओं को इस कार्यक्रम में बढ़-चढ़कर भागीदारी करनी चाहिए। विश्वविद्यालय के स्काउट गाइड समन्वयक श्री रामअवतार पाटीदार ने बताया कि इस शिविर में निपुण एवं राज्य पुरस्कार जाँच परीक्षा शिविर से संबंधित तथ्यों पर प्रकाश डाला गया।

परिसर की आंतरिक गतिविधियों में एक नए आयाम को जन्म देते हुए कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर संस्कार प्रकोष्ठ का शुभारंभ किया गया। धर्मविज्ञान विभाग एवं पर्यटन विभाग द्वारा इस प्रकोष्ठ के उद्घाटन एवं संचालन का कार्य संवहन किया गया। विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा विशिष्ट उपलब्धियों के क्रम को जारी रखते हुए यहाँ की छात्रा दिलराजप्रीत कौर ने राष्ट्रीय स्तर की योग प्रतियोगिता में द्वितीय स्थान प्राप्त कर परिसर को गौरवान्वित किया है। झारखंड में आयोजित राष्ट्रीय योगा स्पोर्ट्स चैंपियनशिप २०१६-१७ (योग फेडरेशन ऑफ इंडिया द्वारा आयोजित) में देश के ३५ राज्यों की टीमों के १०५ विद्यार्थियों ने भागीदारी की। इस प्रतियोगिता में दिलराज प्रीत कौर ने उत्तराखंड राज्य का प्रतिनिधित्व करते हुए दूसरा स्थान प्राप्त कर देव संस्कृति विश्वविद्यालय व उत्तराखंड राज्य का नाम रोशन किया। सुश्री कौर को उसकी इस उपलब्धि के लिए विश्वविद्यालय के श्रद्धेय कुलाधिपति जी सहित सभी अधिकारियों, आचार्यों एवं विद्यार्थियों ने शुभकामनाएँ प्रदान कीं।

योग के क्षेत्र में ही एक और विशेष उपलब्धि विश्वविद्यालय को प्राप्त हुई। यह उपलब्धि है—देव संस्कृति विश्वविद्यालय के विद्यार्थी चंचल सूर्यवंशी द्वारा १२३ मिनट तक शीर्षासन लगाकर नया रेकार्ड बनाना। चंचल ने अपनी इस उपलब्धि का श्रेय श्रद्धेय कुलाधिपति की कक्षाओं (ध्यान एवं गीता) से प्राप्त होने वाली प्रेरणा को दिया है।

उपलब्धियों के इसी क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के चार स्वयंसेवियों को उत्तराखंड संस्कृत विश्वविद्यालय के छठे दीक्षांत समारोह में स्वर्ण पदक प्राप्त हुए। ये पदक उन्हें उत्तराखंड के राज्यपाल डॉ० कृष्णकांत पाल द्वारा प्रदान किए गए। इनमें श्री सतीश कैवर्त एवं श्री ओमप्रकाश तेजरा को दर्शनशास्त्र विषय में तथा श्रीमती आराधना सोनारे एवं सुश्री रुचि को पुस्तकालय विज्ञान विषय में स्वर्ण पदक प्राप्त हुए। ये सभी सदस्य अपनी सेवाएँ निरंतर क्रम में विश्वविद्यालय को दे रहे हैं। इनकी इस उपलब्धि पर समस्त विश्वविद्यालय परिवार ने इन्हें अपनी शुभकामनाएँ प्रदान कीं। पदक विजेताओं ने अपनी उपलब्धियों का श्रेय यहाँ के वातावरण, पूज्य गुरुदेव और श्रद्धेय डॉ० साहब एवं जीजी के मार्गदर्शन एवं आशीर्वाद को दिया। ❑

मानवीय सत्ता के तीन पक्ष हैं—शरीर, मस्तिष्क और अंतःकरण। इन्हीं को स्थूल, सूक्ष्म और कारणशरीर कहते हैं। इनमें काम करने वाली जीवट को ही प्राणाग्नि, लोगोस, बायो इलेक्ट्रीसिटी, जीवनीशक्ति, विद्युत चेतना आदि नामों से जाना जाता है। यही क्रमशः ओजस्, तेजस् और वर्चस् कहलाते हैं। इनका सामान्य संतुलन आरोग्य के नाम से जाना जाता है। इन्हें सही स्थिति में रखे रखना ही स्वास्थ्य रक्षा, समर्थता, बलिष्ठता आदि नामों से जाना जाता है।

हमारा राष्ट्र एक अभूतपूर्व क्रांति की ओर बढ़ रहा है। पूरे विश्व का एक बहुत बड़ा गणतंत्र बहुत बड़े परिवर्तन के दौर से पिछले दिनों गुजरा। नवंबर, २०१६ के बाद हमने बड़े व्यापक स्तर पर परिवर्तन देखे। पूज्य गुरुदेव ने इसे महाक्रांति का दौर कहा था। निमित्त कोई भी बने, अब इसे कोई रोक नहीं सकता। सवा अरब की आबादी का यह देश सोया हुआ दैत्य है (श्री अरविंद)। जैसे ही यह जाग उठेगा, देखते-देखते एक महाशक्ति बनता देखा जा सकेगा। विगत दो अंकों (जनवरी, फरवरी २०१७) में हमने इसके विभिन्न पक्षों पर निगाह डाली। चूँकि यह आम आदमी के रोजमर्रा के जीवन से जुड़े बहुमुखी पहलू हैं, हमारी यह आध्यात्मिक पत्रिका इन सब परिवर्तनों से मुँह नहीं मोड़ सकती। इसके दूरगामी सत्परिणामों पर दृष्टि डालकर आज से-अभी से ही इसका एक अंग बन जाना ही दूरदर्शिता है। हम उन्हीं बातों को इस अंक में आगे बढ़ाते हैं। बिना किसी राजनीतिक स्पर्श के हम नैतिक, बौद्धिक एवं सामाजिक-सांस्कृतिक पुनरुत्थान की इस महायात्रा का सिंहावलोकन कर रहे हैं, ताकि मानवमात्र को दिशा मिल सके।

आर्थिक क्रांति (नोटबंदी) के परिणाम सामने दिखाई दे रहे हैं। बड़े नोट बंद होने से आतंकवाद का अचानक दम घुटता नजर आया। कश्मीर में इन्हीं से दहशतगर्दों को खुराक मिलती थी। अब वह बंद हो गई। स्कूलों को जलाया जा रहा था। सैनिकों पर पत्थर फेंके जाते थे। प्रतिदिन सीमा पार से आक्रमण होते थे। वे बंद हो गए। जो अनाप-शनाप अपव्यय होता था, वह रुक गया। कितनी बड़ी संख्या में काला धन पूरे देश में छाया हुआ था, नकली नगदी सर्कुलेशन में थी, उसके आँकड़े देखते हैं, तो पता चलता है कि बरबादी की ओर ले जा रहे इस राष्ट्र को मानो नई आक्सीजन मिल गई है। चौदह लाख करोड़ से अधिक की राशि बड़े नोटों के रूप में थी। बेनामी संपत्ति बहुतायत संख्या में बड़े शहरों में बहुमंजिली इमारतों के रूप में छाई हुई थी। अब अचानक उस पर एक नियंत्रण-सा लग गया दिखता है। दूरगामी परिणाम और अच्छे होंगे एवं इन भवनों का उपयोग काला धन रखने वालों के द्वारा नहीं, सत्पात्रों द्वारा होगा, ऐसा लगने लगा है।

जहाँ अनर्थकारी धन नियंत्रण से बाहर होता है, वहाँ उसके दुष्परिणाम तरह-तरह के अपराध, नकली रईसी, बढ़ती विदेशी कारों, प्रदर्शनकारी अपव्यय एवं दुराचारों के रूप में दिखते हैं। धन वहीं तक उपयोगी है, जहाँ उसका सदुपयोग-सुनियोजन इस देश के अंतिम आदमी तक होता दिखेगा (अंत्योदय)। पर उससे ज्यादा धन राष्ट्र को घुन की तरह नष्ट करता नजर आने लगता है। धर्मप्रधान अर्थ ही कल्याणकारी एवं मोक्षदायी होता है। अब यह सबको समझ आ रहा है। जैसे-जैसे धुंध छँटेगी, राजनीति में कण-कण में छाए भ्रष्टाचार, नोट के बदले वोट का भस्मासुरी स्वरूप दिखाई देने लगेगा। लोग स्वतः ही समझ जाएँगे कि यह आर्थिक क्रांति कितनी अनिवार्य थी। हाँ! इसने गोपनीयता को दृष्टि में रखते हुए आम आदमी (वही क्यों, सभी नागरिकों) को कष्ट दिया। पर पिछला माह बीतते-बीतते अब स्थिति स्पष्ट हो रही है। '**ड्यू**' राशि अब आप आराम से बैंक या पोस्ट ऑफिस से निकाल सकते हैं। बैंकों के सकारात्मक एवं नकारात्मक, दोनों ही रूप दिखे। लेकिन अब गाड़ी पटरी पर आने में अधिक समय नहीं लगेगा।

अब आम आदमी-हर नागरिक कंप्यूटर की दृष्टि में आ गया है। उसका आर्थिक ट्रांजेक्शन दिखाई दे रहा है। व्यवस्था बनते ही सब ठीक होने लगेगा, ऐसा लगता है। गर्भावस्था में कष्ट तो होता है, पर प्रसूता बालक के जन्म लेते ही चैन की साँस लेती है। अभी हम उसी अवधि से गुजर रहे हैं। नया राष्ट्र जन्म ले रहा है, जहाँ आर्थिक समता देखी जाएगी। इसे कम्युनिज्म से न जोड़ें। इसके सत्परिणाम एक सामाजिक, बौद्धिक, नैतिक क्रांति के रूप में देखें तो समझ में आएगा।

सामाजिक पक्ष

(१) नेग, दहेज, दिखावे से भरी शादियाँ अब बंद करनी पड़ेंगी। लोग पारदर्शिता देखना चाहते हैं। करोड़ों-अरबों रुपये की धनराशि इनमें खरच होती थी। दिखावा काले धन से ही तो होता था। अब किसी भी स्थिति में इसे बंद होना पड़ेगा। कुत्ते की पूँछ टेढ़ी ही रहती है। सीधी करने के लिए सर्जरी करनी पड़ेगी। आदतें हमारी कई वर्षों की हैं। बदलाव आएगा ही। कोई इसमें रोक नहीं लगा पाएगा। अब शादी—आदर्श शादी ही होगी। महँगे खरचीले कार्ड, रिसेप्शन, बरातें, नाच, प्रदर्शन, फार्म हाउसों, बेंकेट हालों के दुरुपयोग बंद होंगे। अपने संगठन ने डेढ़ लाख से अधिक आदर्श विवाह नाममात्र की लागत में विगत पचास वर्षों में कराए हैं। अब इनका प्रचलन तेजी से बढ़ेगा। बची राशि राष्ट्र के सामाजिक विकास में प्रयुक्त होगी। शादियों में, पार्टी में, सार्वजनिक भोज, शराब आदि का उपयोग इतिहास बन जाएगा। पढ़े-लिखे युवा अब आदर्श विवाहों को ही अपनाएँगे। गायत्री परिवार इसके लिए संघर्षात्मक-प्रचारात्मक आंदोलन चलाएगा। यह अब और भी सरल हो जाएगा।

(२) सबसे कड़ा प्रहार मद्य निषेध, अन्य सभी तरह के नशों के बंद होने के रूप में देखा जाएगा। समझदारी जीतेगी और इनका दुरुपयोग अब रुकेगा। यह मानवी मन का दुर्बल पक्ष है, जो नशे के रूप में पलायन की ओर प्रेरित करता है। कितनी दुर्घटनाएँ इससे होती हैं, लोग जानते हैं। नशे में व्यक्ति दुराचार करता है। जानवर बन जाता है। न उसे नीति दिखाई देती है, न कोई होश ही होता है। गैंगरेप में जिस तेजी से बढ़ोत्तरी हुई है, वह चौंकाने वाली है। नशे ने घर तो बरबाद किए हैं, नारी का बुरी तरह शोषण किया है। कई भोली-भाली बलात्कार की शिकार नारियों ने आत्महत्याएँ भी की हैं। नशे ने समाज का एक बड़ा अंधकार भरा वीभत्स दुराचारी स्वरूप दिखाया है। अब समय आ गया है कि पूरे देश में पूरी तरह नशाबंदी लागू हो। शराब, नशीले पेय, तंबाकू, गुटका, विभिन्न तरह के ड्रग्स, सभी पर नियंत्रण लगे। यह सब अब ईमानदारी से कमाने वाली आय से नहीं होगा। कानून का शिकंजा इनको भी कसेगा एवं देखते-देखते आदमी की आदतें बदलने लगेंगी। नशा ही सभी तरह के दुराचारों-अपराधों-दुर्घटनाओं-घर की बरबादियों की जड़ है, यह हमें समझना होगा। बड़े व्यापक स्तर पर जनजागरूकता फैलानी होगी।

(३) अनाप-शनाप काले धन ने अय्याशी को बढ़ावा दिया। गुंडागर्दी बढ़ी एवं शोषण बढ़ा। बाहर के दुश्मनों से तो हम लड़ लेंगे, पर उस अंदर की असुरता से तो हमें ही मोर्चा लेना होगा। अब विलासितापूर्ण जीवन हिकारत की निगाह से देखा जाएगा। इसमें महँगी कारें, महँगे शौक, बड़े-बड़े होटलों में खाना भी शामिल है। १९९० के बाद आर्थिक खुलापन आया। कलर टीवी, बड़ी महँगी कारों के अलावा कई तरह के गैजेट्स देश में आ गए। कारों की बढ़ोत्तरी की कोई सीमा नहीं थी। एक घर में सात-सात कारें, हर सदस्य के लिए अलग गाड़ी होगी तो ट्रैफिक जाम तो होंगे ही। कार रखने की जगह भी नहीं होगी। अब इस पर नियंत्रण लगाना होगा। कार-पूल (Car pool) का उपयोग जन-जन करने लगे, वाहनों पर शासन नियंत्रण लगा दे एवं स्व-घोषणा द्वारा वे अपने वाहन अब धीरे-धीरे समाज के विभिन्न प्रकल्पों के लिए देने लगें तो लगेगा कि परिवर्तन आ रहा है। पर्यावरण में हो रहा प्रदूषण भी

बचेगा। पेट्रोल-डीजल की खपत में कमी आएगी और राष्ट्र का राजस्व बचेगा। बहुतों को मालूम नहीं है कि पेट्रोडालर कितनी महँगी कीमत से हमें अपने वाहनों का ईंधन देते हैं। इसके लिए कई गायें कटती हैं, जिनका मांस निर्यात करके हम पेट्रोलियम प्रोडक्ट्स आयात करते हैं। अब प्राकृतिक गैस पर ही आश्रित रहना होगा। ऊर्जा के नए विकल्प खोजने होंगे, जिन पर शोधकार्य हो रहा है।

हमारे मकान ३ बी एच के, ४ बी एच के हों जरूरी नहीं। हम थोड़े में भी संतोष कर सकते हैं। इससे अनावश्यक शहरीकरण बचेगा, पानी, विद्युत सभी की बचत होगी। शासन को इस संबंध में भी नीति बनानी होगी और हो सके तो बहुमत से अध्यादेश पास करना होगा। इन सबके कारण सरकारी, गैरसरकारी दोनों स्तरों पर भ्रष्टाचार बढ़ा है। भ्रष्टाचारी उस धन को जमा करता है, जो अनीति से उपार्जित है, साथ ही वह अगले दिन मिट्टी बन जाने वाला है। भ्रष्टाचार पर कड़ा अंकुश, बड़ी-से-बड़ी सजा अब समय की माँग है।

(४) शिक्षण संस्थानों में विगत दो दशक में बड़ी तेजी से बढ़ोत्तरी हुई है, पर शिक्षा का स्तर उतना नहीं बढ़ा। हमारे देश में प्रतिभा की कमी नहीं। पर शिक्षा उन्हीं के लिए है, जिनके पास पैसा है, किसी भी तरह कमाया हुआ है और अनाप-शनाप है। क्या आपको लकवा नहीं मार जाएगा? जब आपको पता लगेगा कि एक आर्थोपेडिक सर्जन बनने के लिए शिक्षण संस्थानों में एक करोड़ रुपये तक की ब्लैकमनी अब तक दी जाती रही है। यह कहाँ से आएगी? ब्लैक से। अब वह रास्ता बंद हो गया। तो ये नीम-हकीम जो हड्डी तोड़ रहे थे, अब क्या करेंगे? इनको, इनके माता-पिता को, मेडीकल कॉलेजों को चलाने वाले निजी संस्थानों को अब बदलना ही होगा। शिक्षा की दुकानें जगह-जगह लगी दिखती हैं। ये क्या परिवर्तन लाएँगी? शिक्षा चरित्र-निर्माण करती है। पर जिनकी जड़ें ही भ्रष्टाचार के गंदे नाले में हों, वे क्या चरित्र बनाएँगे?

अपने देश में शिक्षा का स्तर नहीं बढ़ पाया तो इसी कारण। आय.टी.एवं इंजीनियरिंग में बूम तो आया, कई लोग विदेश भी चले गए, पर क्वालिटी नहीं बढ़ी। अब तो आँकड़े बताते हैं कि तीस लाख से ज्यादा इंजीनियर एवं प्रबंधक (एम० बी० ए०) बेकार हैं या चपरासी स्तर का वेतन पा रहे हैं। अब नजरिया बदलना पड़ेगा। सभी लोग शिक्षा एवं विद्या के सार्थक समन्वित रूप को अंगीकार करें। जीवनशैली बदलें। सामाजिक कार्यकर्त्ता बनें। एक पहल देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने की है—ऐसे ७ विश्वविद्यालय देश भर में खोलने की बात कर रहा है, जहाँ से महामानव, देशभक्त, ईमानदार व्यक्ति तैयार हों। अभी तक की यात्रा बड़ी आशादायी रही है एवं सकारात्मक परिणाम सामने आए हैं। अब जो शिक्षा के बड़े-बड़े भवन—कार्पोरेट हाउस-पॉश बिल्डिंग बनकर तैयार हो गई हैं, हमें उनके रचनात्मक उपयोग पर एक थिंकटैंक बनाकर राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा करनी होगी।

क्रांति का दौर चल पड़ा है। थमेगा नहीं। अभी कुछ और बातें, जिनमें नैतिक-आध्यात्मिक आंदोलन एवं बौद्धिक क्षेत्र की क्रांति कैसे होनी है? आगामी अंक में।

(क्रमशः)

इस वर्ष २०१७-१८ को वसंत-से-वसंत (१ फरवरी १७ से २२ जनवरी, १८ तक) युवाक्रांति वर्ष का उत्तरार्द्ध वर्ष घोषित किया गया है। इसमें उन्हीं कामों को गति दी जाएगी, अधिक-से-अधिक नए युवाओं को जोड़ा जाएगा। इसका समापन नागपुर (केंद्र क्षेत्र) में जनवरी, २०१८ में होगा। चार वीडियो रथ क्रांतिकारी कार्यक्रम करते हुए वहीं एकत्र होंगे। सारे देश के युवा भी वहाँ एकत्र होंगे। भविष्य निश्चित ही उज्ज्वल है।

इस भूमंडल का देव न कोई आप का सानी है।
गुरुदेव-सा देव न कोई औघड़दानी है॥

जन-जन के उत्थान के लिए विचार क्रांति अभियान है,
सुदृढ़ और विशाल योजना युग का नवनिर्माण है,
गुरु रूप में हुआ अवतरण धरती पर भगवान का,
संवेदित हो उठा मनुज देवत्व जगा इनसान का,
युग-परिवर्तन की गुरुसत्ता ने अब ठानी है।
गुरुदेव-सा देव न कोई औघड़दानी है॥

कभी राम के रूप किया है रावण का वध आप,
और कृष्ण बन, क्रूर कंस के धोए हैं सब पाप,
हम भी वानर-भालू बनकर रहे आप के पास,
ग्वाल-बाल-गोपियाँ रूप में बने तुम्हारे खास,
इष्टदेव की सूरत हर युग में पहचानी है।
गुरुदेव-सा देव न कोई औघड़दानी है॥

व्याकुल जनमानस को तुमने दिया दिव्य सद्ज्ञान है,
किया समूची सदी के लिए नारी का आह्वान है,
उज्ज्वल भविष्य का सुनिश्चित आश्वासन देने वाले हो,
धरा-धाम के जनसंकुल का भाग्य बदलने वाले हो,
प्यार लुटाते गुरुवर का जीवन तूफानी है।
गुरुदेव-सा देव न कोई औघड़दानी है॥

ज्ञानशरीर विराट का सत्साहित्य अध्याय में,
तत्त्व, ब्रह्म और आत्मज्ञान जन पाएगा स्वाध्याय में,
प्रेम झील मन मध्य सिंहासन गुरु भगवती निवास है,
गुरुभक्ति से मिलता सब कुछ शिष्यों का विश्वास है,
मन के मानसरोवर गुरु की भक्ति जगानी है।
गुरुदेव-सा देव न कोई औघड़दानी है॥

—*शोभाराम शशांक*

▶युवाक्रांति वर्ष◀